'काल-कल्पतरु'
चण्डी

साधक का संवाद

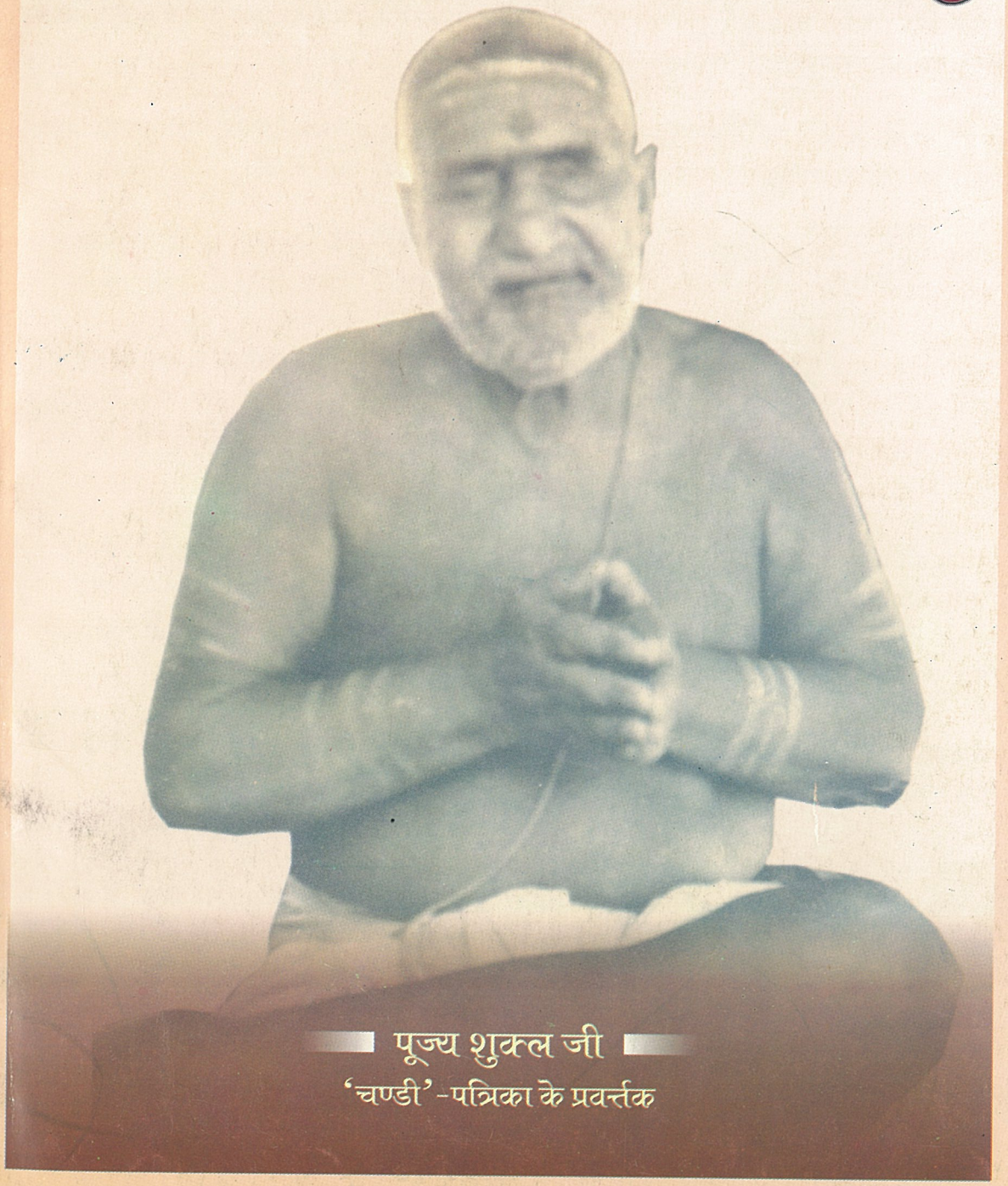

पूज्य शुक्ल जी
'चण्डी'-पत्रिका के प्रवर्त्तक

साधक का संवाद

'धर्म की पुकार' करने से **'धर्म का ज्ञान'** नहीं होता। **'धर्म'** तो जीवन का अङ्ग है। जीवन के व्यवहारों में उसे प्रतिलक्षित होना चाहिए।

●

हमारी परम्परा **'राग'** की रही है, **'विराग'** की नहीं। **'बलवान् बनकर इस संसार का अपना कर्तव्य-पालन करते हुए भोग करो।'** यह विचार-धारा यहाँ की **'संस्कृति'** का मूल रहा है।

●

'पूजा' का यह रहस्य है कि साधक अपने **'मानव'-भाव** को **'देव'-भाव** में परिणत करे, यहाँ तक कि आहार, निद्रा, भय आदि शारीरिक एवं मानसिक विकारों में भी वह अपने को **'देव'** बनाए।

●

'शाक्त-मार्ग'–मानव की **'पशुता'** छुड़ाकर, उसे **'देवता'** बनाने का प्रयत्न करता है। वह जो कुछ करता है, **'धर्म-भावना'** से करता है।

●

'गुरु'-प्रदत्त 'मन्त्र' की शक्ति की धारा का आदि स्रोत **'सदा-शिव की आत्म-शक्ति'** है। वहीं से वह अटूट बहती चली आ रही है। **'गुरु'** से **'मन्त्र'** प्राप्त होने पर **'जप'** का अभ्यास न होने से, उस शक्ति की धारा का विकास रुक जाता है। अतएव **'मन्त्र का जप'** बराबर करने से वह चैतन्य रहेगा और उसकी शक्ति का विकास भी होगा।

●

'देवता की पूजा' सारी-की-सारी **'भाव'**-मय है। उदाहरण के लिए **'भूत-शुद्धि'** को ही लीजिए। यह क्या है? **'भाव-योग'** की एक रोचक क्रिया मात्र। साधक इसको करके इस भावना का अनुभव करता है कि उसने अपनी पूजा के लिए अपने शरीर का ऐसा **'संस्कार'** किया है कि वह एकदम **'दिव्य'** हो गया है और पूजा करने के लिए पूर्ण रूप से उपयुक्त हो गया है।

●

'वैदिक संस्कृति'—मध्य-मार्ग पर स्थित है। वह अनाचारों का निषेध करती है और संयम का आदेश। उसने **'धर्म'** को मानव प्रकृति पर बोझ के रूप में नहीं रखा है।

●

'शाक्त'—अपनी क्षण-भंगुर **'देह'** को **'देवता'** के स्वरूप में परिणत करने का नित्य ही अभ्यास करता रहता है। प्रातः-काल की अर्चना में वह **'मूलाधार'-चक्र** से **'ब्रह्म'-रन्ध्र** तक **'ब्रह्म-विद्या की प्रभा'** से अपने को व्याप्त समझता है और फिर उसे पुनः **'निद्रा'**-गत होने तक बराबर बनाए रखता है।

●

जब तक हम **'अपने धर्म'** को भूले रहेंगे, तब तक हम उसके **'रहस्य'** की बातें जानने के अधिकारी नहीं हो सकते। पहले **'स्व-धर्म'** के जानने का ही नहीं, उसके **'पालन'** करने का प्रयत्न होना चाहिए। **'रहस्य'** के जानने का मार्ग अपने-आप खुल जाएगा। किसी से पूछ-ताछ करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाएगी।

●●●

'चण्डी' वर्ष ६३ :: विशेष प्रस्तुति (१)

साधक का संवाद

''वाम-मार्ग''— 'पञ्च-शुद्धि', 'तत्त्व-शुद्धि', 'ब्रह्म-भाव', 'बलि-दान', 'पञ्च-मकार', 'भाव-योग', 'शक्ति-पूजा', 'चक्र-पूजन', 'तन्त्र-संकेत', 'कुल-धर्म', 'कुलाचार' आदि के सम्बन्ध में रोचक प्रसङ्गों के माध्यम से गम्भीर शास्त्र-परक चर्चा

☆

लेखक
'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल

☆

प्रकाशक
पण्डित देवीदत्त शुक्ल स्मारक :
परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज —२११००६ ☎(०५३२)२५०२७८३

अनुदान २५/-

अनुक्रम

१. 'वाम-मार्ग' का समर्थन
(पृष्ठ ३ से ११)

२. उपलब्धि
(पृष्ठ १२ से १९)

३. व्यापकता
(पृष्ठ २० से २४)

४. 'ब्रह्म'-भाव
(पृष्ठ २५ से ३२)

५. अर्थ का अनर्थ
(पृष्ठ ३३ से ३७)

६. प्रकाशन
(पृष्ठ ३८ से ४९)

७. प्रचार
(पृष्ठ ५० से ६३)

८. गोपन
(पृष्ठ ६४ से ७०)

९. नया अनुभव
(पृष्ठ ७१ से ८८)

१०. कुल-धर्म
(पृष्ठ ८९ से ९६)

प्रकाशक
परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
श्रीचण्डी-धाम, प्रयागराज–२११००६
वैशाख कृष्णा तृतीया, 'हेमलम्ब' सं० २०६१ (८ अप्रैल, २००४)

२५-००

साधक का संवाद

१. 'वाम-मार्ग' का समर्थन

'आओ **ककुआ, 'शिवपुरी'** घूम आएँ।

तीन दिन बारात के झमेले में फँसे रहने से तबीयत ऊब उठी थी। **गणेश** की बात सुनकर कहा — चलो, पर **शिवपुरी** है कितनी दूर?

'यहाँ से दो मील होगी। बहुत सुन्दर जगह है। चलिए, वहीं ठण्ढाई भी छने और सन्ध्या-वन्दन भी हो, पर एक बात है। चुपचाप ही चला जाए। नहीं तो और लोग भी साथ हो जाएँगे, तब वह आनन्द न रहेगा।

परन्तु चलते-चलते **वाजपेयी जी** को भी सुग-सुग लग गई, उनके साथ **ठाकुर** भी जान गए। इस प्रकार हम चार जन चुपचाप खिसक गए। अभी सूर्योदय नहीं हुआ था, उषा-काल का सुहावना समय था। **'गङ्गा'**-तट पर **दादा जी** से भेंट हो गई। उन्होंने देखते ही पूछा— यह मण्डली कहाँ जा रही है?

मैंने प्रणाम किया और कहा—**'शिवपुरी'** जा रहे हैं हम लोग। यदि मन लग गया, तो सन्ध्या तक लौटेंगे।

यह कहकर हम नाव पर बैठ गए। मल्लाह के लग्गी लगाते ही नाव धारा में पड़ गई। आध घण्टे के लगभग हमारी नाव **'शिवपुरी'** के घाट में जाकर लग गई।

मेरा अपना गाँव **गङ्गा** के तट पर ही नहीं, किन्तु उसके एक सुन्दर तट पर है। **गङ्गा** के किनारे के कुछ ऐसे स्थल हैं, जिनकी स्थिति बहुत ही सुन्दर तथा मनोरम है। मेरा गाँव भी एक ऐसे ही स्थल पर बसा है, परन्तु **'शिवपुरी'** के **गङ्गा-तट** को देखकर मैं चकित रह गया। कगार के नीचे ही **गङ्गा** बह रही थीं और कगार पर दूर तक एक सघन बाग फैला हुआ था, जिसके एक अञ्चल पर कगार के किनारे दो पक्के मन्दिर तथा साधारण कुटीर भी एक-दूसरे से अलग-अलग बने हुए थे।

नाव से उतरकर हमने अपने नित्य-कर्मों से छुट्टी पाई। फिर कगार के ऊपर जाकर **मन्दिरों में देव-दर्शन** आदि किया। उसके बाद कुटीर में पहुँचे, जहाँ उस समय दो **संन्यासी** ठहरे हुए थे।

संन्यासियों का अभिवादन करके हम सब लोग उनके पास बैठ गए। वाजपेयी जी से उनकी बातचीत होने लगी। उन्होंने हम लोगों का परिचय **स्वामी जी** को दिया। साथ ही यह भी निवेदन किया कि—महाराज, यदि आपकी आज्ञा हो, तो हम लोग ठण्ढाई-बूटी तैयार करें।

उन **संन्यासियों** में एक ने कहा— हाँ, हाँ, जरूर-जरूर! वहाँ कुएँ पर सिल आदि रखी है। ठण्ढाई-बूटी भी लीजिए। बनाइए-खाइए।

'नहीं महाराज, सामान हम सब लोगों के पास है— केवल सिल-लोढ़ा और एक घड़ा चाहिए।' यह कहकर **वाजपेयी जी** कुएँ पर चले गए। **ठाकुर** और **गणेश** को भी अपने साथ लेते गए। मैं वहीं बैठा रहा।

उन **संन्यासियों** में एक **महात्मा** अपने कुटीर के भीतर ही बैठे रहे। हम लोगों के आने आदि

की ओर उन्होंने ध्यान तक न दिया। बात-चीत केवल वही दोनों **महात्मा** करते रहे, जो बाहर बैठे थे। मैं उनसे बातें तो करता रहा, पर कुटीर के भीतर बैठे हुए **महात्मा** की ओर मेरी निगाह बरबस घूम जाती थी। मेरी मनो-वृत्ति को समझकर उन **स्वामियों** में से एक ने कहा— कुटीर के भीतर जो **महात्मा** बैठे हैं, क्या आप उनके दर्शन करना चाहते हैं? परन्तु वे तो अभी अपनी **ध्यान-धारणा** में हैं। दस बजे से पहले उनसे बातचीत नहीं हो सकेगी।

मैंने कहा— मुझे उतनी शीघ्रता नहीं है। मैं तो आज दिन भर यहीं रहना चाहता हूँ, यदि आपको कोई असुविधा न हो।

'नहीं, नहीं, आप खुशी से रहिए। यदि कहें तो भोजन आदि का भी प्रबन्ध कर दिया जाए।'

'यदि आप लोग भी मेरी रसोई का भोजन ग्रहण करने की कृपा करें, तो भोजन भी बना लेंगे।'

स्वामी जी ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। फलतः मैं भी कुएँ पर चला गया। मैंने **वाजपेयी जी** से कहा — **वाजपेयी,** मैंने **स्वामियों** को भोजन करने का निमन्त्रण दे दिया है, अतएव भोजन बनाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

ठण्ढाई-बूटी छानने के बाद भोजन बनाने की तैयारी होने लगी। **ठाकुर** सामान ले ही आया था। एक मन्दिर के बगल में भोजन बनाने की जगह थी। दाल-भात, रोटी-तरकारी सभी कुछ बना। **स्वामियों** को भोजन कराने के बाद हम लोगों ने भी खाया-पिया। उसके बाद वहीं मन्दिर में जाकर आराम करने लगे। कुछ ही देर बाद वे दोनों **स्वामी** भी आ गए। उन दोनों से देश-काल की बातचीत होती रही। इतने में वे तीसरे **स्वामी** भी वहाँ आ गए और एक आसन डालकर एक ओर बैठ गए।

उन दोनों **स्वामियों** में एक अधिक वृद्ध थे। उन्होंने **वाजपेयी जी** से कहा—ये **स्वामी जी** आप लोगों की शङ्काओं का समाधान कर सकेंगे। इन्होंने अँगरेजी का अच्छा अभ्यास किया है।

वाजपेयी जी ने कहा—सो महाराज, मैं उन अँगरेजी-पढ़ों में नहीं हूँ, जो **'धर्म-कर्म'** को ढकोसला समझते हैं।

उन **स्वामी जी** के सम्बन्ध में मुझे पहले से ही कुछ कौतूहल-सा था। मैंने पूछा— तो क्या **स्वामी जी** अंग्रेजी भी जानते हैं?

'जानते ही नहीं, एम०ए० पास हैं। संस्कृत के भी पण्डित हैं। पहले एक कालेज में अध्यापक थे।'

'संन्यास क्यों ले लिया?'

'यह तो कोई प्रश्न नहीं है। मन में विराग का उदय हुआ, छोड़कर निकल पड़े।'

वाजपेयी जी ने कहा— महाराज, इस समय हम ब्राह्मणों के यहाँ तो धर्म की बड़ी छीछालेदर हो रही है। न **'देव-कर्म'** होता है, न **'पितृ-कर्म'**, हाँ, **'पेट-कर्म'** अवश्य हो रहा है!

स्वामी जी हँसने लगे। उन्होंने कहा—बिना **'पेट-कर्म'** के कोई कर्म नहीं हो सकता और आपने जो यह कहा है कि नव-युवक लोग **'नित्य-कर्म'** छोड़ बैठे हैं, तो यह उनके माता-पिता का दोष है। नहीं तो **'सन्ध्या-वन्दन'** तो वह वस्तु है कि अकेले उसी के करते रहने से प्राणी का परम कल्याण हो सकता है। **'प्राणायाम'** के बाद जो **आचमन का मन्त्र** है, केवल उसी के आशय की ओर ध्यान देने से आप **'सन्ध्या-वन्दन' का महत्त्व** हृदयङ्गम कर

सकते हैं। उसमें **हृदय-शुद्धि** की जिस भावना का निदर्शन है, उस तरह का विधान कदाचित् ही किसी धर्म के **'नित्य-कर्म'** में मिलेगा।

अब तक मैं चुपचाप बैठा **स्वामी जी** का वार्तालाप सुन रहा था। मैंने पूछा—यह कैसे आप कहते हैं कि वैसी बात अन्य धर्मों में नहीं है?

'मैंने जो बात कही है, ठीक कही है और वही क्यों? **हिन्दू-धर्म** में बहुतेरी ऐसी बातें हैं, जैसी दूसरे धर्मों में न मिलेंगी। उदाहरण के लिए आप **'शान्ति-पाठ'** के मन्त्रों को ही देखने की कृपा करें। अपने **'पितृ-तर्पण'** को ही लें। क्या किसी धर्मोपासना में विश्व के कल्याण की भावना इतने उदात्त रूप में मिल सकती है? आपको अपने **'वैदिक धर्म'** का अध्ययन करना चाहिए। तब आप उसकी **'विश्व की कल्याण-भावना'** को हृदयङ्गम कर सकेंगे।'

स्वामी जी के उपदेशात्मक सुर से मैं मन-ही-मन खीझ उठा था। मैंने व्यङ्ग्य के स्वर में कहा— ठीक है **स्वामी जी!** हिन्दू-धर्म की जैसी बातें अन्य धर्मों में नहीं हैं। हिन्दुओं का **'वाम-मार्ग'** ही किस धर्म में मिल सकेगा!

स्वामी जी ने कुछ खिन्न-से होकर मेरी ओर देखा, परन्तु तुरन्त ही अपने को सँभालकर उन्होंने मुस्करा दिया। फिर गम्भीर होकर वे बोले—हाँ, बहुत ठीक कहते हो। हिन्दुओं का **'वाम-मार्ग'** तो किसी भी धर्म में नहीं मिल सकेगा। वह तो भारत की एक अपनी विशेष वस्तु है।

वाजपेयी ने समझा कि स्वामी जी असन्तुष्ट हो गए हैं। उनको मेरा उस तरह पूछना अशिष्टता का द्योतक जान पड़ा। उन्होंने कहा—महाराज, आप इनकी बातों पर ध्यान न दें। ये इसी प्रकार की बातें कहा करते हैं। क्षमा करें, महाराज! आप दया-पूर्वक इनकी उपेक्षा ही करें।

'नहीं, नहीं। इनका कथन सर्वथा स्वाभाविक है। मुझे इसका काफी अनुभव है। यह धर्म-सम्बन्धी वार्तालाप है, जो दोनों पक्षों के लिए लाभ-दायक हो सकता है।'

वाजपेयी जी ने कहा— महात्माओं के दर्शनों का यही तो फल है। कल बारात में कुछ लोग धर्म की हँसी उड़ा रहे थे और उसे पण्डितों का ढकोसला बतला रहे थे!

स्वामी जी बोले—यह हमारी शिक्षा-दीक्षा का दोष है। **धर्म की महिमा** के सम्बन्ध में **क्षेमेन्द्र कवि** ने लिखा है— **''कान्तार-दुर्गेषु परिच्युतानां, तापातुराणां पर-लोक-मार्गे। स्निग्धः प्रवृद्धः फल-पूरिताशः, छाया-तरो धर्म-समोऽस्ति नान्यः।।''** अर्थात् दुर्गम जङ्गल में भटके हुए तथा पर-लोक के मार्ग में ताप-पीड़ित प्राणियों के लिए **'धर्म'** के समान स्निग्ध, प्रवृद्ध और फलद अन्य छाया-तरु नहीं है। **'धर्म'** के सम्बन्ध में जो लोग उस तरह की बातें करते हैं, अपना अज्ञान प्रकट करते हैं। कम-से-कम हम लोग तो ऐसी अनर्गल बातें कर ही नहीं सकते।

अभी तक जो वे तीसरे **संन्यासी** चुपचाप बैठे हम लोगों की बातें सुन रहे थे, बोले—जिज्ञासुओं को सन्मार्ग बताना हमारा धर्म है। (मेरी ओर सङ्केत करके कहा) आपके ये मित्र एक सच्चे जिज्ञासु हैं, पर इन्हें कदाचित् अभी तक कोई बतानेवाला नहीं मिला है, अन्यथा **'वाम-मार्ग'** के सम्बन्ध में इनके विचार इस तरह के न होते।

मैंने पूछा—तो क्या आप बताने की कृपा करेंगे? क्या सचमुच **'वाम-मार्ग'—हिन्दू-धर्म की**

एक विशेष वस्तु है?

'हाँ, **'वाम-मार्ग'—हिन्दू-धर्म की एक असाधारण विशिष्ट वस्तु** है। यदि उसके सम्बन्ध में आप कुछ जानना चाहते हैं, तो मैं यथा-सम्भव सब कुछ बताने को तैयार हूँ।'

वाजपेयी जी ने कहा— पहले ये कलकत्ते से छुट्टी पा लें, तब आपसे अपना समाधान करेंगे। अब जाने की आज्ञा दें। सन्ध्या हो आई है, और हमें बारात में ८ बजे तक पहुँच जाना है।

वाजपेयी जी का यह हस्तक्षेप मुझे रुचिकर नहीं लगा, परन्तु सन्ध्या हो आई थी, अतएव हम चलने हेतु खड़े होने को लाचार हो गए। सबने **स्वामियों को प्रणाम** किया और **'गङ्गा-तट'** पर आकर नाव पर सवार हो गए। मार्ग में **वाजपेयी जी** ने मुझे खासी फटकारें बताईं। मुझे इस बात का खेद अवश्य हुआ कि समयाभाव के कारण मैं उन **स्वामी जी** से बातचीत न कर सका।

★ ★ ★

'शिवपुरी' से लौटने के बाद **वाजपेयी जी** ने बारात में ऐसा रङ्ग बाँध दिया कि लोग मुझे नास्तिक समझने लगे, परन्तु मैंने उनके आरोपों की ओर ध्यान तक न दिया और यदि वहाँ की बातचीत के सम्बन्ध में कोई कुछ पूछता था, तो मैं उसे हँसकर टाल देता था। धार्मिक वाद-विवाद करने का मेरा स्वभाव ही नहीं है, परन्तु मजा तो विदाई के दिन आया, जब **दादा जी पण्डित बुद्धिराम** को मेरी बहली में बिठाने को लाए।

मेरी बहली के पास आकर **दादा जी** ने मुझसे कहा—**शर्मा,** इन **पण्डित जी** को अपने बहली में बिठा लो। इन्हें तुम्हारे साथ सब तरह का आराम भी मिलेगा।

'हाँ, हाँ, जरूर। आइए **पण्डित जी!**' मैंने बड़ी प्रसन्नता के साथ **पण्डित जी** से कहा।

पर **पण्डित जी** चुपचाप खड़े ही रहे। **दादा जी** ने चकित होकर **पण्डित जी** की ओर देखकर कहा —**पण्डित जी,** बैठते क्यों नहीं? इस तरह खड़े क्यों हो?

'यही कि **शर्मा जी** को कष्ट होगा। मैं **पण्डित** आदमी हूँ और ये नए रङ्ग-ढङ्ग के आदमी हैं।'

'भला-भला! ये तुमसे कम **पण्डित** नहीं हैं। तुम भी **वाजपेयी जी** के चक्कर में आ गए! बैठिए! बैठिए।' यह कहकर **दादा जी** यहाँ से दूसरों के प्रबन्ध के लिए चले गए।

इधर **पण्डित जी** बुरी तरह झेंप गए। यह देखकर मैंने अति विनम्र-भाव से **पण्डित जी** से निवेदन किया—आइए **पण्डित जी!** मेरे साथ आपको किसी तरह का कष्ट न होने पाएगा।

यह कहकर मैंने अपना हाथ बढ़ाया। **पण्डित जी** ने मुझे अपना झोला थमा दिया, जिसे मैंने बहली के पीछे रख दिया। जब **पण्डित जी** चढ़ आए, तब मैं आगे की ओर बहलवान के पीछे बैठ गया और **पण्डित जी** के लिए अधिक-से-अधिक जगह कर दी। **पण्डित जी** बैठते हुए बोले— आपने तो सारी जगह ही खाली कर दी है और खुद सिमट कर एक ओर बैठ गए हैं! इस तरह बहल की यह लम्बी यात्रा कैसे होगी? आइए, अच्छी तरह बैठिए।

खैर, जब हम दोनों आदमी अच्छी तरह बैठ गए और आगे की सवारियाँ चल पड़ीं, तब हमारे बहलवान ने भी बैल हाँके। कुछ दूर चलने के बाद जैसा बारातों में होता है, सवारियों की दौड़ शुरू हुई। हमारे बहलवान ने भी उसमें भाग लेना चाहा, पर **पण्डित जी** की डाँट-डपट से वह वैसा न कर सका। फलतः हम

लोग पिछड़ गए। उन्होंने बैलों को उनकी स्वाभाविक चाल से ही हाँकने दिया। **पण्डित जी** ने कई एक बारातों का हाल बताया, जिनमें बहलों और गाड़ियों की दौड़ के फल-स्वरूप लोगों की जानें तक चली गई थीं।

जब **पण्डित जी** का वह व्याख्यान समाप्त हो गया, तब मैंने **पण्डित जी** से पूछा—आपने मुझे नई रोशनी का आदमी कैसे समझ लिया?

'सो मैं क्या जानूँ! बारात में लोग-बाग आपके सम्बन्ध में कुछ ऐसा ही कहते रहते थे।'

'लोग क्या कहते थे, मैंने वह सब नहीं सुना। और यदि आपने वैसा कुछ सुना था, तो उसे सच कैसे मान लिया? सम्भव है, वे लोग हँसने के लिए वैसा कहते रहे हों।'

'हो सकता है, परन्तु वे तो अपने कथन की पुष्टि में **'शिवपुरी'** के वार्तालाप का उल्लेख करते थे। फिर मैं भी **'शिवपुरी'** गया था और **स्वामी जी** ने भी आपके आक्षेप की बात मुझसे कही थी।'

'कौन-सा आक्षेप? मैंने तो कोई आक्षेप नहीं किया था।'

'क्या आपने यह नहीं कहा था कि **'वाम-मार्ग'** भी तो **हिन्दू-धर्म** की ही देन है? इस कथन में कितना व्यङ्ग्य है, निन्दा की कैसी ध्वनि है, क्या इस ओर आपका ध्यान नहीं जाता है?'

'मैंने वह आक्षेप अनजान में थोड़े ही किया था। **'वाम-मार्ग'** वास्तव में एक निन्दनीय धर्म है। इस देश में उसकी कौन निन्दा नहीं करता है?'

'आप तो रुष्ट हो गए। आप भूलते हैं। धर्म निन्दनीय नहीं हो सकता। आप लोग जल्दी उठकर चले आए, नहीं तो **स्वामी जी** ने आपकी शङ्का को वहीं दूर कर दिया होता।'

'तो क्या वे **'वाम-मार्ग'** का समर्थन करते?' मैंने चकित होकर कहा।

'उनकी बातचीत से तो ऐसा ही जान पड़ता था। और धर्म का पक्ष कौन धर्मवान् व्यक्ति नहीं लेगा?'

मैंने बात काटकर कहा—क्या आप भी उसका समर्थन करेंगे? मांस-खाना, मदिरा-पान करना क्या आप धर्म समझते हैं? आप वैष्णव हैं.....मथुरा जी के कण्ठी-बन्द चौबे हैं.....!

पण्डित जी ने उसी तरह मधुरता से कहा—मांस-मदिरा की बात तो मैं नहीं जानता। हाँ, धर्म की बात जानता हूँ और उसका मैं अवश्य ही समर्थन करूँगा।

'वाम-मार्ग' में और है ही क्या?' मैंने कड़ककर कहा।

'मैं' **वाम-मार्ग** का आचार्य नहीं हूँ, परन्तु जिस शास्त्र में उसका प्रतिपादन किया गया है, उसका थोड़ा-बहुत ज्ञान मुझे अवश्य है और वह शास्त्र ऐसा-वैसा नहीं है कि चुटकियाँ बजाकर उड़ा दिया जा सके।'

'वह कौन शास्त्र है? क्या उसका नाम जान सकता हूँ?'

'क्यों नहीं? उसे लोग **'तन्त्र-शास्त्र'** कहते हैं। उसके वक्ता **सदा-शिव** माने गए हैं और इसी कारण **'वेदों'** की भाँति वह भी **'श्रुति'** की श्रेणी में रखा गया है। उसके ग्रन्थों की भी बहुत अधिक संख्या है और उन सभी में **'योग'** और **'उपासना'** का विस्तार के साथ निरूपण किया गया है। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि **'भारत की परम्परागत अध्यात्म-विद्या' का विकसित रूप**

'तन्त्र-ग्रन्थों' में ही भले प्रकार बताया गया है। ऐसे ही महान् शास्त्र में **'वाम-मार्ग'** का प्रशंसा के साथ उल्लेख किया गया है। तब उसकी निन्दा कोई कैसे कर सकता है?'

'तो क्या आपके उस **'तन्त्र-शास्त्र'** में मांस-मदिरा का विधान किया गया है?'

'मांस-मदिरा की जो बात आप कहते हैं, सो उसका उल्लेख किस **'वेद'** या **'धर्म-ग्रन्थ'** में नहीं है? **'शुक्ल यजुर्वेद'** के अध्याय १९ में यह मन्त्र है— **'ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज इन्द्रियं सुरया सोमः सुत आ सुतो मदाय शुक्रेण देव देवताः पिप्रिग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि।'** अर्थात् हे सोमदेव, सुरा द्वारा बलवान् तथा तेजवान् होकर अपनी निर्मल शक्ति से देवताओं को प्रसन्न करो, यज्ञ-कर्त्ता को रसवाला भोजन और ब्राह्मण तथा क्षत्रिय को शक्ति प्रदान करो। इसी प्रकार **'ऋग्वेद'** में भी **'अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये'** अर्थात् 'मदिरा पीकर सूर्य को पूजते हुए' कहा है, परन्तु इन बातों से कोई **'वेदों'** की तो निन्दा नहीं करता। यह तो रहस्य है उनका।'

'तो क्या **'वेद'** में भी ऐसी बातें है?'

पण्डित जी कुछ जोश में आ गए थे। मेरी बात को अनसुनी कर वे कहते ही गए—आप तो मांस-मदिरा की ही बात कहकर **'वाम-मार्ग'** से नाक सिकोड़ते हैं, परन्तु अनेक लोग तो **'तन्त्र'** के **'षट् प्रयोगों'** को लेकर उनका उपहास करते हैं। वे यह नहीं जानते हैं कि वैसे प्रयोगों का आकर सारा-का-सारा **'अथर्व-वेद'** है और संहिता-ग्रन्थ ही क्यों, ज्ञान-मार्ग-परक **'उपनिषदों' में वशीकरण** आदि प्रयोगों का उल्लेख है। उदाहरण के लिए **'बृहदारण्यक उपनिषद्'** (६.४) में स्त्री-वशीकरण, पत्नी के प्रेमी के मारण, सन्तान-प्राप्ति आदि के मन्त्र हैं। इसी प्रकार **कौशीतकी** (२) में भी धन-प्राप्ति, स्त्री या पुरुष-वशीकरण आदि के मन्त्र हैं। तब **'तन्त्र'** ही क्यों निन्दनीय ठहराए जाएँ? वह **'उपासना'**-विषय का एक महान् शास्त्र है। जगत् के मानव-समाज के कल्याण के लिए उसमें अधिकारी के भेदानुसार भाँति-भाँति के विधान किए गए हैं। मेरा ज्ञान शास्त्र-सम्बन्धी बहुत सीमित है। मैं उस सम्बन्ध में विस्तार के साथ निवेदन नहीं कर सकूँगा, पर यह बात आप जान लें कि इष्ट की साधना के बारे में जो विधियाँ **'तन्त्र-शास्त्र'** में बताई गई हैं, वैसी अन्यत्र नहीं।

'जब यह बात है, तब लोग **'वाम-मार्ग'** की निन्दा क्यों करते हैं?'

'यह तो निन्दा करनेवाले जानें। **'वाम-मार्ग'** तो **'आर्य-धर्म'** का एक अङ्ग है। मैं तो संसार के किसी भी धर्म की निन्दा नहीं करता।'

बातचीत का यह सिलसिला एकाएक इसलिए बन्द हो गया कि हमारी बहल उस जगह पहुँच चुकी थी, जहाँ बाराती जल-पान करने के लिए ठहर गए थे। वहाँ पहुँचने पर हम लोग भी जल-पान करने को ठहर गए। जलपान कर चुकने के बाद जब बारात चलने को हुई, तब **पण्डित जी** ने अपना झोला बहली से उतार लिया। उन्होंने कहा— भाई, **दादा जी** ने मुझे विदा कर दिया है। अब मुझे यहाँ से अपने एक यजमान के यहाँ जाना है। **जय जमुना मैया** की।

मैंने बड़े आदर से **चौबे जी** को प्रणाम किया। मेरी भी बहल चल चुकी थी और अब हमारी बहल बारात में सबसे आगे जा रही थी, क्योंकि बहल में **चौबे जी** नहीं थे।

साधक का संवाद

पञ्च-शुद्धि

साधु-सन्तों से दूर रहने का मैंने सदैव प्रयत्न किया है, तो भी प्रायः मैं उनके सम्पर्क में बराबर आता रहा हूँ। उस दिन **दद्दू** नहीं माने और मुझे उनके साथ वागीश्वर के दर्शन को जाना ही पड़ा, वहाँ **ब्रह्मचारी जी** से भेट हो ही गई। मैंने चाहा कि **शङ्कर के दर्शन** करके भाग चलें, परन्तु **दद्दू** तो केवल **शङ्कर के दर्शनार्थ** जाते नहीं, वे वहाँ की कुटी में ठहरे हुए **साधु-सन्तों** का कुछ देर तक सत्सङ्ग भी करते हैं। इस बार जिस दिन मैं छुट्टी में गाँव गया था, उसी दिन से वे आग्रह कर रहे थे कि **वागीश्वर** चलकर **ब्रह्मचारी जी** के दर्शन किए जाएँ। उन्होंने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी और यहाँ तक कहा था कि आज तक ऐसा साधु यहाँ नहीं आया है।

शङ्कर के दर्शन कर चुकने के बाद **दद्दू** के पीछे-पीछे मैं भी कुटिया में गया और **ब्रह्मचारी जी** का अभिवादन करके मैं दबककर एक ओर बैठ गया। **ब्रह्मचारी जी** ने मेरी ओर देखते हुए कहा— बहुत दिनों से आपका नाम सुन रहा था। **शङ्कर** की कृपा से आज दर्शन भी हो गए। सुना है, आप जल्दी ही कलकत्ता लौट जानेवाले हैं?

मैं समझ गया कि **दद्दू** ने मेरी चर्चा **ब्रह्मचारी जी** से की होगी। मैंने विनम्रता के साथ कहा— हाँ, **महाराज!** मेरा काम ही वैसा है। अगर वहाँ उपस्थित न रहूँ, तो सब अस्त-व्यस्त हो जाए।

'हाँ, कारबार तो बिना अपने देखे नहीं चलता, परन्तु मैंने तो सुना है कि आप **पूजा-पाठ** भी बहुत करते हैं, साथ ही **तीर्थों का भ्रमण** आदि भी।'

'सो **महाराज जी,** अवकाश मिलने पर ही और भ्रमण आदि तो मन को स्वस्थ करने के लिए प्रायः किया करता हूँ।'

'मैंने सुना है, आप **साधु-सन्तों का सत्सङ्ग** भी खूब करते हैं।'

'ऐसी बात होती, तो आज आठ दिन बाद मैं आपके पास न आता!'

ब्रह्मचारी जी कह-कहा मारकर हँस पड़े। उन्होंने कहा— मुझ जैसे का नहीं, किन्तु सिद्धों का, पहुँचे हुओं का।

'ऐसों के दर्शन का तो सौभाग्य मुझे कभी नहीं प्राप्त हुआ है, न उसकी मुझे इच्छा ही रहती है। हाँ, भ्रमण में यदि किसी महात्मा से भेंट हो गई, तो उनके पास बैठकर थोड़ी देर तक धर्म-चर्चा अवश्य कर लेता हूँ।'

'तब यह क्यों नहीं कहते कि आप **'ज्ञान-गङ्गा'** का स्नान किया करते हैं।'

'नहीं **महाराज,** ऐसा हो, तो फिर क्या कहना। हाँ, तरह-तरह की बातें सुनते-सुनते चित्त विभ्रम में अवश्य पड़ गया है।'

'सो कैसे? ऐसा तो न होना चाहिए।'

'कम-से-कम मुझको तो ऐसा ही अनुभव है। अभी हाल की ही बात है। घर आते समय

मैं **'विन्ध्याचल'** में उतर गया था। वहाँ एक **'तान्त्रिक'** से भेंट हो गई। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा कि **'वाम-मार्ग'** के ही द्वारा मनुष्य का उद्धार हो सकता है।'

'और आपने उनकी बात मान ली।'

'नहीं, मान कैसे लेता?'

'यदि आप मानकर विचार करते, तो भ्रम के दूर होने का ही उपक्रम होता।'

'तो क्या आप **'वाम-मार्ग'** के सिद्धान्तों से सहमत हैं?'

'धर्म के सिद्धान्तों में मत-भेद कहाँ है? **'वाम-मार्ग'** भी धर्म-साधना की एक प्रणाली है। मैं उस मार्ग के रहस्यों से अवगत नहीं हूँ, परन्तु पिछले **'कुम्भ'** के अवसर पर मैं **हरिद्वार** में **चण्डिका के मन्दिर** में ठहरा हुआ था। वहाँ एक **अवधूत** तथा एक **गृहस्थ** का वाद-विवाद सुना था। उसमें **अवधूत महाराज** ने **'पञ्च-शुद्धि'** का जो निरूपण किया था, उसे सुनकर तो मेरी भी **'वाम-मार्ग'** पर श्रद्धा हो गई।'

'वह **'पञ्च-शुद्धि'** क्या पदार्थ है, आप बतलाने की कृपा करें।'

'सो तो मैं नहीं बता सकूँगा। किसी **'वाम-मार्गी'** साधक से ही उसका रहस्य आप जान सकेंगे। मैं तो केवल यही कहूँगा कि धर्म की भावना में भ्रम का भाव नहीं होना चाहिए। कम-से-कम हमारे धर्म का तो यही आदेश है।'

'आपका कौन धर्म है?

'यही **'सनातन-धर्म'**! और कौन धर्म? **'सनातन-धर्म'** ही तो यह कहता है कि सब **ब्रह्म-मय** है। तब भ्रान्ति किस बात की?'

'परन्तु **स्वामी जी,** ऐसी भावना हमारे सदृश संसारी लोग कहाँ से और कैसे लाएँ?'

'इसी के लिए **भगवद्-भजन** है। हमारे धर्म में जो नाना प्रकार की **उपासना-प्रणालियाँ** हैं, उनकी साधना से ही वह भावना हृदयस्थ होती है। **हरिद्वार** के उन **अवधूत महाराज** में मुझे वह भावना जाग्रत रूप में मिली थी। उन्होंने मुझसे कहा था कि **'पञ्च-शुद्धि'** की उपासना-प्रणाली से अनायास ही **देवता का दर्शन** होता है।'

'पर **विन्ध्याचल** के **तान्त्रिक** जी ने **'पञ्च-शुद्धि'** का तो नाम तक नहीं लिया था। वे तो **'पञ्च-मकार'** का ही गुण-गान करते रहे।'

'उनकी बात मैं क्या जानूँ? उक्त **अवधूत जी** तो **'पञ्च-शुद्धि'** के सम्बन्ध में बड़े गौरव-पूर्ण ढङ्ग से वार्तालाप करते थे और वह सब उनके श्रीमुख से सुनकर मैंने अपने को धन्य माना था।'

'वह **'पञ्च-शुद्धि'** क्या वस्तु है, कुछ तो बताने की कृपा करें।'

'मैं कह चुका हूँ, उस विषय का मुझे सम्यग् बोध नहीं है, पर उनके कथन का जो सारांश मैं ग्रहण कर सका हूँ, वह यह है—

आत्म-स्थानं मन्त्र-द्रव्ये, देव-शुद्धिस्तु पञ्चमी।
यावन्न कुरुते देवि!, तस्य देवार्चनं कुतः॥

'अर्थात् इष्ट-देवता की उपासना में पाँच शुद्धियाँ आवश्यक हैं—१. **आत्म-शुद्धि,** २. **स्थान-शुद्धि,** ३. **मन्त्र-शुद्धि,** ४. **द्रव्य-शुद्धि,** ५. **देवता-शुद्धि।** इन पाँचों शुद्धियों की प्रणाली से जो साधक अपने इष्ट की साधना करेगा, उसे अवश्य ही अपने उद्देश्य की सिद्धि मिलेगी। इसमें सन्देह नहीं, यह उपासना-प्रणाली एक प्रकार की वैज्ञानिक प्रणाली है और योगी लोग तो इसे **'लय-योग'** ही कहेंगे।'

'लय-योग कैसे हुआ?'

'क्यों नहीं? साधक पहले **'पूजा-स्थान'** का शोधन करके अपनी **आत्मा का शोधन** करेगा, फिर वह अपने **'इष्ट-मन्त्र' का शोधन** करेगा। तब वह **'पूजा-द्रव्यों' का शोधन** करेगा। तदनन्तर वह **'इष्ट-देवता' का संस्कार** करके उसे **चैतन्य** करेगा। इस प्रकार अपने को एवं अपने आस-पास के वातावरण को विशुद्ध बनाकर **इष्ट-देवता की पूजा** में वह निरत होगा। इस सारी क्रिया के करने के लिए कितनी तन्मयता की आवश्यकता है? और भाई, यह **'लय-योग'** न होगा, तो और फिर क्या होगा?'

मैं कुछ भी समझ न सका। मैंने आग्रह के साथ निवेदन किया—**ब्रह्मचारी जी,** मेरी समझ में कुछ नहीं आया। अधिक स्पष्ट रूप में बतलाने की कृपा करें।

'यह **तान्त्रिक प्रक्रिया** है। गुरु-मुख से सुनने से ही समझ में आएगी। तो भी जो कुछ मैं जानता हूँ, कहता हूँ। **'स्थान-शुद्धि'** से मतलब उस स्थान की शुद्धि से है, जहाँ साधक बैठकर उपासना करता है। वह पहले **'दिग्-बन्धन'** करता है, तब **आसन का पूजन** कर उस पर आसीन होता है और **'शरीर-शुद्धि', 'भूत-शुद्धि'** एवं **'प्राणायाम'** करने से होती है। इसके बाद **षडङ्गादि** तथा **'मातृकादि न्यास'** करे। इससे वह **देव-स्वरूप** होता है। इसके बाद **'मातृका वर्णों से मूल-मन्त्र को ग्रथित'** करके **इष्ट-मन्त्र का शोधन** करे। तदनन्तर यथा-विधि **प्रोक्षण** एवं **धेनु-मुद्रादि से पूजा-द्रव्यों का शोधन** करे। फिर **'पीठ'-स्थान** में **देवता का आवाहन** करके धूप-दीपादि उपकरणों से **मूल-मन्त्र द्वारा देवता का विशोधन** कर पूजा-कार्य में संलग्न हो। कैसी सुन्दर पूजा-प्रक्रिया है! इसके द्वारा चित्त-वृत्ति का कितनी सुन्दरता से निरोध हो सकता है!'

ब्रह्मचारी जी का भाषण मैं मन्त्र-मुग्ध-सा बैठा सुन रहा था। इतने में वहाँ पड़ोस के एक जमींदार आ गए। वे रुग्ण-से थे। अतएव **ब्रह्मचारी जी** का ध्यान उनकी ओर खिंच गया। उन्होंने मुझसे कहा — अब रात हो आई है, इधर ये अतिथि आ गए हैं। इनका आदर-सत्कार करने की अनुमति चाहता हूँ।

लाचार होकर हम दोनों प्रणाम कर वहाँ से उठ आए। मार्ग में **दद्दू** ने पूछा—**ब्रह्मचारी जी** तुम्हें कैसे जान पड़े?

मैंने कहा— बहुत ठीक! खेद है, मैं इससे पहले यहाँ नहीं आया। इनके सत्सङ्ग से तो मेरा बड़ा हित होता।

'तो फिर कलकत्ता जाना स्थगित न कर दो?'

'दद्दू, तुम तो सब जानते हो। यदि कल न जाऊँगा, तो सारा किया-कराया चौपट हो जाएगा। किसी भी तरह नहीं रुक सकता।'

ब्रह्मचारी जी के सम्बन्ध में बातचीत करते हुए हम लोग गाँव पहुँचकर अपने-अपने घर चले गए।

* * *

साधक का संवाद

२. उपलब्धि

कलकत्ते में काम करते-करते जब मन उचटने लगता था, तब मैं शहर में **अन्नदा दादा** के यहाँ ही जाकर अपने मन को राह पर लाया करता था। **दादा** बङ्गाली होकर भी कान्यकुब्ज ब्राह्मण होने का गर्व करते थे और चूँकि मेरा भी गोत्र भरद्वाज ही था, इससे वे मुझे अपना छोटा भाई ही समझते थे। मैं भी उनके परिवार से ऐसा घुल-मिल गया था कि बङ्गाली तक भी मुझे बङ्गाली ही समझने लगे थे।

अन्नदा बाबू के यहाँ मैं पूरा-का-पूरा बङ्गाली ही हो जाता था। उनके यहाँ मैं कनवजिया-पने की सारी बातें भुला दिया करता था। उनका तथा उनके कुटुम्बियों का सच्चा प्रेम-व्यवहार ही इसका मूल कारण था। इस बार जब मैं उनके यहाँ गया, तब **दादा** घर पर नहीं थे, वे अपनी जमींदारी में गए हुए थे। अतएव उनके पुत्र **बीरू** ने ही मेरा स्वागत-सत्कार किया और मेरे साथ वैसा ही व्यवहार किया, जैसा एक पुत्र अपने पिता के साथ करता है। **दादा** के न होने से मैंने शीघ्र ही शहर को लौट जाना चाहा, परन्तु **बीरू** ने और उनसे अधिक **भाभी** ने इतना अधिक जोर दिया कि मुझे **दादा** के लौट आने तक वहाँ ठहरे रहना पड़ा।

आखिर एक दिन **दादा** लौटकर आ गए। वे रात की गाड़ी से आए थे, अतएव मुझे उनका आना ज्ञात न हो सका—मैं सो गया था। जब सोकर उठा, तब **बीरू** ने ही आकर कहा कि—'कल रात की गाड़ी से **दादा** आ गए और वे यह जानकर बहुत ही प्रसन्न हुए कि आप यहाँ हैं। वे अपने साथ एक **भैरवी** लाए हैं। कहते थे कि इनसे **शर्मा जी** को मिलाऊँगा।' यह कहकर **बीरू** हँसने लगा।

मैंने पूछा—**बीरू बाबू**, तुम हँस क्यों रहे हो?

'मैंने **दादा जी** से कहा था कि **चाचा जी** तो **भैरव-भैरवियों** के फेर में रहते नहीं हैं, तब इनसे भेंट कराना बेकार होगा। मेरे ऐसा कहने पर **दादा जी** बिगड़ पड़े और मैं भाग खड़ा हुआ। वही बात याद हो आने से मुझे हँसी आ गई।'

'बात तो तुमने ठीक ही कही है। **दादा जी** भी तो जानते हैं कि मैं साधु-सन्तों से दूर रहता हूँ, परन्तु जब उन्होंने कहा है, तब उनकी आज्ञा का पालन करना ही पड़ेगा।'

थोड़ी ही देर के बाद **दादा जी** भी अपने कमरे से बाहर निकले। मैंने सविधि उनकी चरण-धूलि लेकर अपने माथे से लगाई। उन्होंने मुझे छाती से लगा लिया और उनकी आँखों में सदा की भाँति आँसू छलछला आए। उन्होंने कहा—**शर्मा**, तुम इस बार खूब आए। रात में आने पर जब **बीरू** ने कहा कि तुम यहीं हो, तभी तुमको जगाकर तुमसे मिलना चाहा, पर तुम्हारी **भाभी** ने कहा कि अभी सोए हैं, कच्ची नींद जगाना ठीक नहीं। अच्छा, तुम अब जल्दी स्नान-ध्यान से निपट लो। मैं एक **भैरवी** को लाया हूँ। उनसे मिलकर तुम बहुत प्रसन्न होगे।

'हाँ **दादा**, **बीरू** भी यही कह रहा था।' और मैं **बीरू** के साथ स्नान-घर चला गया। **बीरू** ने कहा — **चाचा जी**, जान पड़ता है, दादा जी **भैरवी** के चक्कर में आ गए हैं। पहले वे इन **भैरवियों** को घर के पास भी फटकने नहीं देते थे। इस बार तो ये **भैरवी जी** घर के भीतर पूजा-घर के पास कमरे में ठहराई गई हैं! और जब **माँ** उनकी सारी

सुख-सुविधा कर चुकीं, तभी **दादा जी** हटे!

मैंने पूछा— **भैरवी जी** कैसी जान पड़ती हैं?

'जैसी सब **भैरवियाँ** दिखती हैं, वैसी ही वे भी हैं! वही कषाय-कोपीन, वही रुद्राक्ष-स्फटिक आदि की मालाएँ, वही त्रिशूल आदि। कोई विशेषता मुझे तो नहीं दिखी।'

'अरे भाई! कोई बातचीत तो की होगी ही, इच्छा-अनिच्छा तो प्रकट की ही होगी।'

'सो कुछ नहीं। मां ने पद-धूलि ली, तब सिर हिला दिया। इसके बाद उनके साथ चुपचाप अपने कमरे को चली गईं। कुछ खाया-पिया भी नहीं।'

हम लोग स्नान-पूजा करके दरवाजे की बैठक में आ बैठे। जल-पान का सामान लिए हुए **दादा जी** पहले से ही बैठे थे।

जलपान करते समय **दादा जी** ने अपनी जमींदारी की बातें छेड़ दीं। उसी सिलसिले में उन्होंने **भैरवी मां** का भी हाल बताया। अन्त में उन्होंने कहा—**शर्मा,** तुम्हें अच्छी तरह मालूम है कि मैं इन साधु-सन्तों का महत्त्व नहीं मानता। इनके यहाँ आते-जाते तुमने मुझे कभी न देखा होगा, परन्तु यह **भैरवी** अद्भुत है। तुम स्वयं ही जान लोगे। दस बजे दर्शन कराऊँगा।

यह कहकर वे भीतर चले गए। इधर हम अखबार पढ़ने में लग गए। ठीक दस बजे **बीरू** मुझे बुलाने आया। मैं उसके साथ भीतर गया। पूजा-घर के पासवाले कमरे में जाकर देखा, दादा जी **भैरवी** से बैठे बातें कर रहे हैं। **भैरवी** को सविधि प्रणाम कर मैं वहीं एक ओर एक आसन पर बैठ गया। **भैरवी** को मेरा परिचय देते हुए **दादा** ने कहा—यह मेरा छोटा भाई है। शहर में रहता है और व्यापार करता है। इसकी कपड़े की दूकान खूब चलती है।

भैरवी ने मेरी ओर दृष्टि-पात किया। इसके बाद **दादा** को लक्ष्य करके कहा— यह तुम्हारा छोटा भाई है! यह तो बङ्गाली नहीं जान पड़ता। यह तो पछाँही आदमी जान पड़ता है।

कुछ खिन्न-से होकर **दादा जी** ने कहा— इससे क्या? हम दोनों ही कान्यकुब्ज हैं और हम दोनों स-गोत्र हैं। तब भाई नहीं हैं, तो फिर क्या हैं?

हँसकर **भैरवी** ने कहा—'आपका यह विचार सर्वथा ब्राह्मणोचित है। आप सचमुच धन्य हैं।' फिर मेरी ओर मुँह करके उन्होंने कहा—आशा है, आपने मेरे कथन का वैसा अर्थ न लिया होगा। महाशय! मेरा भी भरद्वाज-गोत्र है और जमीन्दार महाशय के सिद्धान्त के अनुसार मैं आप दोनों की बहन हुई।

दादा जी ने कहा— नहीं-नहीं! आप तो साक्षात् जगदम्बा-स्वरूपा हैं। इस तरह के सम्बन्ध तो हम जैसे सांसारिक लोगों के लिए ही हैं।

यह कहकर उन्होंने हम दोनों की ओर देखकर कहा— तुम लोग **मां जी** के पास बैठकर बातचीत करो। मैं कुछ ही देर में आता हूँ। एक जरूरी काम है।

यह कहकर **दादा जी** चले गए। **भैरवी मां** ने हँसकर विशुद्ध हिन्दी में मुझसे पूछा—भाई भारद्वाज जी, पच्छिम में तुम्हारा गाँव किस जिले में है? तुम्हारा 'आस्पद' क्या है?

उनकी शुद्ध बोल-चाल की हिन्दी तथा देशी उच्चारण सुनकर मैं चकित रह गया। मैंने विनम्रता के साथ अपना 'आस्पद' बता दिया और कहा— **मां जी,** आप तो बहुत साफ हिन्दी बोलती हैं, और वह भी मेरे बैसवाड़ी-जैसी! क्या आप कभी वहाँ रही हैं?

'अवधूत तो सभी जगह आते-जाते रहते हैं। उनका अनेक बोलियों के बोल लेने का अभ्यास रहता है।'

'आप ठीक कहती हैं, पर आप तो उस तरह हिन्दी बोलती हैं, मानो आपकी मातृ-भाषा ही हो।'

'तुम्हारा अनुमान बहुत-कुछ ठीक है। हम बङ्गालियों की मातृ-भूमि कान्यकुब्ज देश ही है, अतएव वहाँ की बोली बोल लेना हम लोगों के लिए असम्भव नहीं है।' यह कहकर वे भगवती का एक गीत गा पड़ीं। गीत **रामप्रसाद साधक** का था और उनके मुँह से वह खूब बन पड़ा। गीत के समाप्त होने पर मैंने डरते-डरते पूछा—**मां जी,** आप तो शाक्तोपासिका ही होंगी?

'उपासना आदि की चर्चा तो उपासक ही कर सकते हैं। तुम तो उपासक नहीं जान पड़ते।'

मैंने हत-प्रभ-सा होकर कहा— उपासक तो नहीं हूँ, पर जिज्ञासु अवश्य हूँ। जिज्ञासा का समाधान होने पर ही लोग उपासक होते हैं।

'तुम्हारी यह जिज्ञासा, यदि मेरा अनुमान ठीक है, प्रौढ़ता को प्राप्त हो गई है और उसका समाधान आज तक नहीं हो पाया। ऐसी दशा में अब तुम्हें अपने जिज्ञासु-रूप को छोड़ देना चाहिए। तभी तुम्हारा कल्याण होगा।'

भैरवी के इस स्पष्ट कथन से मैं मर्माहत-सा हो उठा। मैंने कुछ-कुछ कर्कश-से स्वर में कहा—परन्तु **मां जी!** मुझे आज तक ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं मिला, जिसने मेरा भले प्रकार समाधान किया हो।

भैरवी ने भी मेरे ही स्वर-में-स्वर मिलाकर उत्तर दिया—तो उसकी आशा तुम मुझसे ही कैसे कर सकते हो? मैं एक साधारण **भैरवी** हूँ। न शास्त्र का ज्ञान है, न अनुभव का ही बल है। **गुरुदेव** ने जो मार्ग बता दिया, उसी को पकड़े रहने का प्रयत्न करती रहती हूँ।

'वही तो मैं जानना चाहता हूँ कि वह वस्तु क्या है, जिसके आकर्षण से आपने सांसारिक सुखों को लात मार कर संन्यास का मार्ग ग्रहण किया है।'

'यह सब तो प्रश्नोत्तरों से नहीं जान पाओगे। इसके लिए तो साधक बनना पड़ेगा।'

'और सो भी बिना पहले से समझे-बूझे!'

'और नहीं तो क्या! इसके लिए अपने-आपको **गुरुदेव** को सौंप देना पड़ेगा और जो-जो आदेश वे करें, उसका अक्षर-अक्षर पालन करना पड़ेगा। तभी कोई साधना के मार्ग पर चल सकेगा।'

'मैं तो ऐसे **गुरुदेव की खोज** में बरसों से लगा हुआ हूँ, पर पहले से मैं जान लेना चाहता हूँ कि मुझे क्या करना होगा, परन्तु प्रयत्न करने पर भी ऐसा व्यक्ति मुझे आज तक नहीं मिला।'

'मेरी समझ में तुम अभी उसके पात्र नहीं हो। जब तुम उसके अधिकारी हो जाओगे, तो **गुरुदेव** के मिलने में एक क्षण की देरी न होगी।'

'**पात्र** होने—**अधिकारी** बनने का क्या उपाय है?'

'यही कि स्व-धर्म का निष्ठा के साथ पालन करना, कुल-धर्मानुसार देवार्चन और पितृ-कर्म आदि कर्मों को श्रद्धा से करना।'

'यथा-शक्ति यह सब मैं बराबर करता रहता हूँ। सुना है, मेरे पूर्वज **शाक्त** थे, पर मुझे उसके प्रति वैसी श्रद्धा नहीं है।'

'सो क्यों? शास्त्र का तो आदेश है कि स्व-धर्म का ही पालन करना चाहिए।'

'**शाक्त** लोग अपनी पूजा-अर्चा में **मद्य-मांस** आदि का प्रयोग करते हैं और मैं इन दोनों वस्तुओं को फूटी आँख भी देखना नहीं चाहता।'

मेरे इस उत्तर से **भैरवी** भी बड़े जोर से हँस पड़ीं और इतना हँसीं कि उनकी आँखों में आँसू आ गए। अपने आँसू पोंछते हुए उन्होंने कहा—'तब तुम तो अपने **गुरु** आप ही बने हुए हो! तुमको किसी दूसरे **गुरु** की क्या आवश्यकता है?' यह कहकर वे कुछ गम्भीर हो गईं और उन्होंने धीरे-धीरे कहा—देश का वायु-मण्डल ही कुछ ऐसा हो गया है! लोगों को अपनी बातें आज कहाँ पसन्द हैं? सारा देश विलायती चश्में लगाए हुए है। जिस **मद्य-मांस** से तुम्हें घृणा हैं,

उससे भी गर्हित **मद्य-मांस** आज इस देश के महा-जन हँस-हँसकर आत्म-सात् करते रहते हैं! यह तो सब कहने भर की बातें हैं। मैं तुमको नहीं कहती। तुम्हारी तरह के कुछ लोग भले ही 'सुधार-वाद' के अनुयायी हों, पर उनका भी वह 'सुधार-वाद-प्रेम' केवल जबानी ही दिखाई देता है। इससे मेरा कहना है कि अपनी शक्ति को देखकर काम उठाना चाहिए। हमारा यह देश धर्म-देश है, अतएव सभी को अपने कुल-धर्मानुसार शास्त्र का मत मानना चाहिए। यही एक कल्याण-प्रद मार्ग है।

भैरवी मां यह कहकर **काली मां का नाम-कीर्तन** करने लगीं। इतने में ही दादा जी भी आ गए। उन्होंने आते ही कहा— **मां जी,** प्रसाद तैयार है। आज्ञा हो, तो ले आऊँ।

उन्होंने कहा—जो तुम्हारी इच्छा।

इस पर हम सब लोग वहाँ से चले आए। जब **मां जी** प्रसाद पा चुकीं, तब **भाभी** ने हम लोगों को भोजन करने के लिए बुलाया। भोजन के समय बात-चीत के सिलसिले में **दादा जी** ने **भैरवी माँ** की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि ऐसी निष्ठा-वाली एवं सच्चरित्र **भैरवी** उन्होंने आज तक नहीं देखी। मुझसे उन्होंने कहा—**शर्मा,** तुम इनका सत्सङ्ग करके अपनी शङ्काओं का भले प्रकार समाधान कर सकते हो।

मैंने कहा— परन्तु **दादा जी,** वे तो मुझे उसका पात्र ही नहीं समझती हैं।

'नहीं-नहीं, तुम निश्चिन्त रहो। वे भले प्रकार तुम्हारी शङ्काओं का समाधान कर देंगी। मैं उनसे कह दूँगा।'

'कब तक रहेंगी? मुझे तो आज ही शहर में जाना पड़ेगा। और वहाँ से छः-सात दिन के पहले नहीं लौट सकूँगा।'

'कोई चिन्ता नहीं। ये **दुर्गा-पूजा** के बाद ही यहाँ से जायँगी। इनको एक विशेष मतलब से यहाँ लाया हूँ।'

भोजन करने के बाद हम लोग बाहर आए। कुछ देर विश्राम किया। सन्ध्या होने के लगभग मेरी मोटर आ गई। **दादा जी** की चरण-धूलि लेकर जब मैं जाने लगा, तब **भाभी** ने कहा— **शर्मा,** यहाँ फल वैसे नहीं मिलते हैं। अब जब आना, तो अपने साथ कुछ अच्छे फल अवश्य ले आना।

मैंने आज्ञा शिरोधार्य की और उनके चरण-स्पर्श कर कार पर आ बैठा। यद्यपि मैं शहर चला आया, तो भी मेरा मन **भैरवी मां** की ओर खिंचा रहा। मैं उन्हें एक क्षण को भी नहीं भूल सका। वे यथा-नाम तथा गुण ही थीं। उनके मुख की तपो-पूत कान्ति में अद्भुत आकर्षण तो था ही, उनकी वाणी में तादृश ही प्रभाव था। उनके पास रहकर कुछ दिन तक सत्सङ्ग करने की बार-बार इच्छा होती थी, परन्तु व्यवसाय के मोह के कारण नहीं जा सका। अन्त में सप्तमी के दिन **दादा** ने कहला भेजा कि **अष्टमी का सवेरा** यहीं हो। अतएव सवेरे उठने पर मैंने गाड़ी में फल-फूल आदि धराए और उनके घर की राह ली।

जब मेरी कार **दादा जी** के बँगले के पोर्टिको में जा खड़ी हुई, मैंने देखा—वे बरामदे में खड़े मेरी प्रतीक्षा-सी कर रहे हैं। मैंने उतरकर चरण-स्पर्श किए। उन्होंने कहा— 'मैं जानता था, तुम सवेरे ही आ जाओगे। अच्छा, आज के यज्ञ में तुमको और **वीरू** को भी शामिल करूँगा। इसके लिए तुम दोनों को निराहार-व्रत करना पड़ेगा। गङ्गा-स्नान कर **भैरवी मां** के पास रहकर आज दिन भर **धर्म-चर्चा** ही में रहना। मैं तो आज पूजा के काम में व्यस्त रहूँगा। भेंट और बात-चीत बहुत कम होगी।' यह कहकर वे तो स्नान के लिए चले गए। मैं **वीरू** के कमरे में चला गया। **वीरू** ने उठकर मेरे चरण छुए। मैंने कहा— क्यों **वीरू,** यह यज्ञ कैसा हो रहा है? **दादा** ने निराहार रहने की आज्ञा दी है। कैसे रह सकेंगे?

उसने हँसकर कहा— **दादा** आजकल अहर्निश **धर्म-चर्चा** में लगे रहते हैं। हम लोगों को

भी अपनी ही राह ले जाना चाहते हैं।

देर तक इसी तरह बात-चीत होती रही। इसके बाद स्नान-पूजा करके हम दोनों **भैरवी मां** के पूजा-घर में गए। उनको सविधि प्रणाम कर आसन पर बैठ गए।

भैरवी मां ने कुशल-प्रश्न पूछने के बाद कहा—'क्यों **शर्माजी,** इतने दिन कहाँ रहे? उस दिन का वार्तालाप अधूरा ही छोड़कर आप तो एकदम गायब ही हो गए! क्या उसे मन-बहलाव के लिए ही छेड़ा था?' यह कहकर वे हँसने लगीं।

मैंने विनीत भाव से कहा— नहीं **मां जी,** ऐसी बात नहीं है। मैंने जिज्ञासु-भाव से ही उसे छेड़ा था। आज-कल दूकान का काम बढ़ जाता है। इसलिए नहीं आ सका।

'मैंने यों ही कहा है। मैं जानती हूँ, आपको **धर्म से अनुराग** है। **शाक्त-धर्म** का रहस्य तो आपको अवश्य ही जानना चाहिए। वह तो आपका **कुल-धर्म** है।'

'हाँ, **माँ जी!** हम लोग **शाक्त** हैं और हमारे यहाँ **भगवती की पूजा** बराबर होती रहती है। यह अवश्य है कि हम लोग उसका विधि-विधान नहीं जानते। इससे पुरोहित जी के द्वारा स्त्रियाँ ही सब कुछ कर-धर लेती हैं।'

'आप जैसे पढ़े-लिखे आदमी के लिए विधि-विधान जान लेना सुगम है, परन्तु उसे जानें, तो कैसे जानें? **तान्त्रिक दीक्षा** से घबराते जो हैं।'

'हाँ, **मां जी!** लोक-निन्दा का डर है। फिर मन भी गवाही नहीं देता। आप जानती ही हैं कि **तान्त्रिक पूजा** के सम्बन्ध में लोगों की कैसी धारणा है।'

'परन्तु वह धारणा तो भ्रान्ति-पूर्ण है और भ्रान्ति की धारा में बहे चलना तो बुद्धिमानी का काम नहीं है। उदाहरण के लिए **शक्ति-पूजा** की बात को ही मैं लेती हूँ। उसके सम्बन्ध में जो अपवाद फैला हुआ है, वह क्या ठीक है? कम-से-कम **हिन्दू-तन्त्रों** में तो वह बात नहीं है। कौन नहीं जानता कि हिन्दू-स्त्री के लिए पतिव्रत-धर्म कितने महत्त्व का है। तब **तन्त्र-मार्ग** उस धर्म का कैसे त्याग कर सकता है? मैं जानती हूँ कि **संग्रह-ग्रन्थों** में कुछ ऐसे वचन हैं, जिनसे जान पड़ता है कि **चक्र-पूजा** में **परकीया** का ग्रहण करना वैध है, परन्तु यह सत्य है कि वे वचन **हिन्दू-तन्त्रों** के नहीं हैं और न **हिन्दू-शाक्तों** के **चक्रों** में **परकीया** की बात तो अलग रही, **स्वकीया** का भी उस रूप में ग्रहण नहीं होता है, जिसकी चर्चा करके लोग **शाक्तों की निन्दा** करते हैं। आखिर **शाक्त** भी तो हमीं-तुम्हीं लोग हैं।'

'तो क्या यह प्रवाद मिथ्या है? इसका कोई आधार नहीं है?'

'आधार की बात मैं कह चुकी। यह दुनियाँ बहुत बड़ी है। यहाँ क्या नहीं हो सकता, परन्तु जहाँ तक मैं जानती हूँ, **तान्त्रिक धर्म** में वह सब कुछ भी नहीं है, जिसको लेकर लोग उसकी निन्दा करते हैं। उसका तो मूल सिद्धान्त यह है कि **पशु-भावापन्न** मनुष्य को **देवता** बना देना। उसकी **पशु-भावनाओं** को संयम में रखकर उसको **देवत्व** के मार्ग पर अग्रसर करना, यहाँ तक कि वह **दिव्य-भावापन्न** हो जाय। **वासनाओं की भावना** उसमें न रह जाय और वह **देव-भाव** को प्राप्त कर ले। ऐसे **धर्म-मार्ग** के सम्बन्ध में जो लोग अनर्गल बातें करते हैं, उसका कारण उनका अज्ञान है।'

'और **मद्य-मांस**?'

भैरवी मां हँस पड़ीं। जब उनकी हँसी बन्द हुई, उन्होंने कहा— '**शाक्तों** में **मद्य-मांस** का ग्रहण पान और भोजन के रूप में नहीं है। चरणामृत-पान तो **बिन्दु-रूप** में है और देवता के प्रसाद में २-४ बताशे ही मिलते हैं, यह कौन नहीं जानता। इससे सुनी-सुनाई बातों के फेर में नहीं आना चाहिए। धर्म को जब धर्म के रूप में देखोगे, तब सारी वस्तु-स्थिति आपकी समझ में आ जाएगी। आज जो **महा-यज्ञ** यहाँ होगा, उसे

जब आप देखेंगे, तब आपका सारा सन्देह दूर हो जाएगा।' यह कहकर **भैरवी मां** गम्भीर-सी हो गईं और वे बार-बार **जगदम्बा का नाम-स्मरण** करने लगीं। इतने में दरबारी ने आकर कहा—**दादा जी** बुला रहे हैं आप दोनों बाबुओं को।

दरबारी के साथ हम दोनों **यज्ञ-मण्डप** के दरवाजे पर गए। भीतर से **दादा जी** ने कहा— जो अतिथि आ रहे हैं, उनका स्वागत-सत्कार मैं आज नहीं कर सकूँगा। उनकी सँभाल तुम्हें बाहर रहकर करनी होगी। जाओ।

यह आज्ञा पाकर हम दोनों बाहर आकर आनेवाले सज्जनों के स्वागत-सत्कार में लग गए। इस काम से हमें सन्ध्या हो जाने के बाद ही छुट्टी मिली। निराहार होने से हम दोनों ही पस्त-सा हो गए थे, तो भी न जाने क्यों उस दिन हम दोनों का उत्साह भङ्ग नहीं हुआ। दस बजे तक दर्शनार्थ लोग आते रहे और प्रसाद बँटता रहा। उसके बाद लोगों का आना बन्द हो गया।

दादा जी का सन्देश आया कि— 'अब जो लोग आएँ, उनका परिचय लेकर यहाँ भीतर पहुँचाते जाओ।' **दादा जी** ने एक पुर्जा भेजा था, जिसमें कोई ४० नाम लिखे थे। ग्यारह बजे के लगभग कुछ लोग आए। नाम-धाम पूछकर उन्हें **यज्ञ-मण्डप** में पहुँचा आए। इस प्रकार जब सब लोग पहुँच गए, तब **दादा** ने हम दोनों को भी भीतर बुला लिया।

भीतर जाने पर वहाँ का दृश्य देखकर हम दोनों ही दङ्ग रह गए। भीतर का टट्टर हटा देने से **दुर्गा-मन्दिर** और **यज्ञ-मण्डप** एक हो गया था। बीच के आसन पर बैठकर **काली जी** के मन्दिर के **हल्दार बाबू** पूजा कर रहे थे और उनके दाहिने **भैरवी मां** बैठी **जप** कर रही थीं और दूसरे लोग एक क्रम से अपने आसनों पर चुपचाप बैठे **जप** कर रहे थे। वह दृश्य देखकर हम दोनों अवाक् खड़े रहे। **दादा** ने कहा—तुम दोनों भी एक-एक आसन लेकर वहीं बैठ जाओ।

हम लोग चुपचाप बैठकर उस हृदय-ग्राही दृश्य को देखने लगे। ठीक ढाई बजे **पूजा** समाप्त हुई। तब **हल्दार बाबू** ने हमारी ओर देखकर कहा—**शर्मा,** यह तुम्हारा और **बीरू** का सौभाग्य है कि आज इस पवित्र अवसर पर तुम्हारी **दीक्षा** हो रही है और तुम्हें **मन्त्र** देने के लिए **कामाख्या** से **भैरवी मां** पधारी हैं।

यह कहकर वे उठे और हम दोनों का सविधि **संस्कार** करने लगे। उसके बाद **भैरवी मां** ने हम दोनों को **मन्त्र** प्रदान किया। तदनन्तर सब लोगों में प्रसाद बाँटा गया। चार बजते-बजते सब कृत्य समाप्त हुआ और सब लोग अपने-अपने स्थान को चले गए। दूसरे दिन जब हम सोकर उठे, तब अपने भाग्य को सराहने लगे। **दादा जी** ने कहा—**शर्मा,** जीवन में ऐसा अवसर बड़े भाग्य से मिलता है।

मैंने उनके चरणों को स्पर्श करके कहा—यह सौभाग्य इन्हीं चरणों की रज का फल है। मैं नहीं जानता था कि आप मेरा इतना स्नेह करते हैं।

कुछ दिन **दादा** के यहाँ **भैरवी मां** की सेवा में रहकर मैं शहर चला आया। अब मेरे मन में पहले की तरह दुर्भावनाएँ नहीं उठती हैं। उठें भी कैसे? अब तो मां ने मुझे अपनी शरण में ले लिया है।

* * *

भैरवी मां— **अन्नदा दादा** के यहाँ अधिक समय तक रहीं। अतएव उनके निरीक्षण में मैंने और **बीरू** ने दोनों ने अपने-अपने **मन्त्र का सविधि पुरश्चरण** कर लिया। इस दीर्घ-काल में हम सभी लोग **मां** जी के घनिष्ठ सम्पर्क में आ गए थे। **मां** जी बहुत ही शान्त, सरल और स्नेह-शील थीं। गप-शप तथा प्रपञ्च की बातों से सावधानी से अपने को दूर रखती थीं। उनके रूप में हम लोगों को सचमुच वैसा ही **गुरु** मिला, जैसा हम चाहते

थे। मां का जीवन तप का जीवन था। अहर्निश पूजा-पाठ में लगी रहती थीं। यही एक उनका व्यसन था और कोई नहीं। बातचीत करते समय भी उनका ध्यान जगदम्बा के चरणों पर ही लगा रहता था। यदि **अन्नदा दादा** का वर्षों का आग्रह न होता और उनके पतिदेव ने आदेश न किया होता, तो वे कदापि कलकत्ते न आतीं और न हमें **दीक्षा** ही देतीं। **दादा** ने कहा था कि उनके पति **स्वामी भैरवानन्द** ने मां जी से कहा कि 'यदि तुम नहीं आओगी, तो मुझे अपनी प्रतिज्ञा को तोड़कर जाना पड़ेगा और **दीक्षा** देनी पड़ेगी।' **स्वामी भैरवानन्द** ने **कामाख्या-पीठ** छोड़कर बाहर न जाने की प्रतिज्ञा की थी, साथ ही इस बात की भी कि वे किसी को **दीक्षा** भी नहीं देंगे। अतएव **भैरवी मां** को लाचार होकर कलकत्ते आना पड़ा था। **स्वामी भैरवानन्द अन्नदा दादा** को इतना अधिक इस कारण मानते थे कि दोनों **गुरु-भाई** थे। अस्तु।

जब यह एक दिन निश्चय हो गया कि अमुक दिन **भैरवी मां— कामाख्या** को जायँगी, तब हम सभी लोग बहुत ही दुखी हुए। **भैरवी मां** से हम लोगों के मन का भाव छिपा नहीं रहा। बातचीत करते समय उन्होंने कहा—तुम लोगों को इस प्रकार उदास नहीं होना चाहिए। क्या **आत्मिक सम्बन्ध** को सांसारिक सम्बन्ध के आगे अब भी नगण्य बनाए रहोगे? यह मैं न होने दूँगी।

इसके बाद उन्होंने **गुरु-स्तोत्र** का ऐसे ढँग से स्तवन किया कि हमारी आँखें खुल गईं और हमारी उदासी का चिह्न तक न रह गया। **मां जी** ने मेरी ओर मुँह करके पूछा—**शर्मा,** मैं तो अब जा रही हूँ। जो कुछ जानना-पूछना हो, जान-पूछ लो।

मैंने विनय के साथ कहा—आपने जो कुछ बताया है, वही मेरे कल्याण के लिए पर्याप्त है। मुझे कुछ जानना-पूछना नहीं है। जब आपने मेरा सारा दायित्व ग्रहण कर लिया है, तब मैं अब निश्चिन्त हूँ।

'शङ्का-समाधान से भी निश्चिन्त हो गए हो?'

'हाँ, मां! वह सब भी अब नहीं उठते हैं। आपने दया-पूर्वक जो राह लगा दी है, उसमें कोई बाधा नहीं पड़ रही है। मैं उससे सन्तुष्ट हूँ मां!'

मां ने **वीरू** की ओर देख कहा—और तुम **वीरू**?

वीरू में कालेज के लड़कों की सी चञ्चलता थी ही। उसने चमककर कहा—मां, शङ्काएँ और कु-तर्क तो भाई साहब ही अधिकतर किया करते हैं। मुझे इस प्रकार के वाद-विवाद का कभी शौक ही नहीं रहा, पर उस दिन वाली बात मैं भले प्रकार नहीं समझ सका। उसे तो एक बार समझाकर बता ही दें।

मां जी ने हँसकर पूछा—कौन सी बात?

'वही जो भाई साहब ने पूछी थी—शक्ति-पूजा-वाली बात।'

मां जी ने सहज भाव से कहा—**वीरू,** उसमें तो कोई पेंच की बात नहीं है। वह तो बहुत स्पष्ट है। मैंने कदाचित् तुम लोगों से कहा होगा कि **तन्त्र-मार्ग** में अनेक **'आचार'** हैं। उनमें भारतीयों का **'कुलाचार'** वेद-सम्मत आचार है, परन्तु इस युग की धर्म-ग्लानि के फल-स्वरूप दूसरे आचारों का इसमें मिश्रण हो गया है और उनका अलग-अलग करके निर्देश करना एक असाध्य कार्य है। इसी दुरवस्था का यह परिणाम है कि **शाक्त-सम्प्रदाय** छोटे-छोटे समूहों में बँटकर छिन्न-भिन्न हो गया है। हमारे समूह के आचार्य **'वेद'** का आश्रय लिए हुए **'तन्त्र-मार्ग'** का अनुसरण करते हैं। उनका कहना है कि इस **'क्रान्त'** के लिए यही **'तन्त्रानुशासन'** श्रेय है।

वीरू ने कुछ चकित-सा होकर कहा— यह **'मिश्रण'** और यह **'क्रान्त'** मेरी समझ में नहीं आ रहा है।

मां जी ने कहा—एशिया महा-द्वीप का दक्षिण-पूर्व का विशाल भाग **'तीन क्रान्तों'** में विभक्त है और प्रत्येक **'क्रान्त'** के लिए अलग-अलग **'तन्त्र'** हैं। उस दिन जब मैं तुम्हारे घर की पोथियाँ देख रही थी, तब उनमें **'चीनाचार-तन्त्र'** नाम की एक पोथी निकली थी। उसमें **'शक्ति-पूजा'** आदि का जो विधान किया गया है, वह चीन-देशवासियों के लिए है, हम लोगों के लिए नहीं —पर आज यहाँ के **तान्त्रिक संग्रह-ग्रन्थों** में **'चीनाचार'** की बातें भी शामिल कर ली गई हैं!

मैंने पूछा—**मां जी**, ऐसा क्यों हुआ? और वह क्यों ठीक नहीं है?

मां जी ने हँसकर कहा—इस सम्बन्ध में एक उदाहरण देना ठीक होगा। तुमने **परमहंस रामकृष्ण** का जीवन-चरित पढ़ा होगा। वे बड़े ऊँचे दर्जे के साधक थे। उनके चरित में लिखा है कि **शाक्त-साधना** में पूर्णता प्राप्त कर चुकने पर उन्होंने **अद्वैत, इस्लाम-धर्म** आदि की क्रम-क्रम से साधनाएँ करके उन-उन धर्मों की भी सिद्धि प्राप्त की। यदि उनका कोई शिष्य उन साधना-विधियों को लिपि-बद्ध करके उनके शिष्य-मण्डल में उस पुस्तक का प्रचार करता, तो आज **परमहंस** के अनुयायियों में हम उस साधन-प्रणाली का प्रचार अवश्य ही पाते, परन्तु उनके शिष्यों ने उनकी **'अद्वैत-साधना'** को ही ग्रहण किया, शेष को छोड़ दिया। उधर हमारे धर्म-ग्लानि-काल के आचार्य, जो भी साधना के नाम से मिला, अपने संग्रह-ग्रन्थों में भरते गए! यही कारण है कि इस देश के **'वीराचार'** में **'चीनाचार'** घुल-मिल गया और जिस **'शक्ति-पूजा'** की बात उठाकर लोग हमारे **'वीराचार'** की निन्दा करते हैं, वह **'चीनाचार'** की वस्तु है। बड़े दुःख की बात है कि इस देश के अनेक **शाक्त-साधक** इस बात की ओर ध्यान नहीं देते और अपने भ्रम-पूर्ण दुराग्रह से इस पवित्र साधना को लोक-निन्दा का पात्र बनाए हुए हैं, परन्तु यह एक आशा की बात है कि अनेक आचार्य यथा-शक्ति इस बात का प्रयत्न बराबर करते रहे हैं कि इस देश का **'वीराचार'** विदेशी प्रभावों से सर्वथा मुक्त रहे, भले ही उनका **शाक्त-सम्प्रदाय** छिन्न-भिन्न क्यों न हो जाए।

वीरू ने पूछा—परन्तु **मां जी, शाक्त-धर्म** का तो यह उद्देश्य है कि सबका सङ्गठन हो, क्योंकि मां के उपासक सब भाई-भाई हैं।

'तुम ठीक कहते हो, परन्तु **कुलाचार** की रक्षा करनी ही पड़ेगी। **शास्त्रादेश** का पालन करना ही होगा।'

मैंने कहा—**मां जी**, यह **'चीनाचार'** यहाँ कैसे आ गया? और क्या वह निन्द्य है?

'परमहंस रामकृष्ण का उदाहरण दे चुकी हूँ। उनके जैसे और भी साधक यहाँ हो चुके हैं। अपना अनुभव बढ़ाने के लिए उन्होंने दूसरे **'आचारों'** की साधनाएँ की होंगी। **वशिष्ठ** ने तिब्बत जाकर **'चीनाचार'** के अनुसार **तारा** की उपासना की थी। इसी तरह अन्य साधनाओं को दूसरे लोगों ने किया होगा। उनकी सिद्धियों का महत्त्व देखकर लोगों ने उन साधनाओं के पूजा-क्रम को अपने पूजा-क्रम में शामिल कर लिया होगा। इस प्रकार यह **मिश्रण** हुआ। अब रहा यह कि क्या वे निन्द्य हैं। मैं इस सम्बन्ध में यही कहूँगी कि अधिकारी के लिए कुछ भी निन्द्य नहीं है और साधारण साधकों के लिए तो अपना **कुल-धर्म** ही श्रेय है।'

इतने में **पुजारी जी** ने आकर कहा—**मां जी, दादा जी** पूजा-गृह में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

यह सुनकर हम सब लोग उठ खड़े हुए। **मां जी** को **पूजा-गृह** तक पहुँचाकर हम दोनों बाहर चले आए।

* * *

साधक का संवाद

३. व्यापकता

देश जाते हुए या वहाँ से कलकत्ते आते हुए जब-जब मैं **विन्ध्याचल** से होकर निकला हूँ, मैंने **विन्ध्याचल** में उतरकर **माँ का दर्शन** अवश्य किया है और **'त्रिकोण' की यात्रा** भी अवश्य की है। **विन्ध्याचल** में निस्सन्देह वैसा कोई आकर्षण नहीं है—न तो वहाँ की बस्ती ही विशेष सुन्दर है, **गङ्गा-तट** भी रम्य नहीं है, **माँ का मन्दिर** भी भव्य एवं विशाल नहीं है और न **'त्रिकोण-यात्रा'** का मार्ग तथा उसमें पड़नेवाली पहाड़ी ही मनोरम या आतङ्क-जनक है, तथापि यही सब मेरे मन को सदैव आकृष्ट किए रहा है और अब तो अर्थात् जब से माँ ने अपनी सेवा में ले लेने की कृपा की है, वह मेरे लिए इस **पवित्र भारत-भूमि** में परम कल्याण-प्रद स्थान हो गया है। यहाँ पहुँचने पर मेरे मन को जो शान्ति प्राप्त होती है, उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। दुर्भाग्य से इस बार देश आते समय मैं **विन्ध्याचल** नहीं उतर सका। वैसा झमेला ही पड़ गया था, परन्तु जब कलकत्ते फिर जाने लगा, तब मैं **विन्ध्याचल** में सदा की भाँति उतर पड़ा। स्टेशन पर मेरी भेंट **सेठ बिहारीलाल** से हो गई। मुझे देखते ही **सेठ जी** ने कहा—अच्छा, **शर्मा जी** हैं? खूब आए।

मैंने कहा—कुशल तो है!

उन्होंने कहा— **माई के दरबार** में भी कुशल न होगी, तो कहाँ होगी? बात यह है कि एक **महन्त जी** साथ हैं। वे यहाँ **सविधि पूजन** करना चाहते हैं और यहाँ के लोगों का हाल आप जानते ही हैं। सबेरे से इसी फेर में हूँ। अभी तक कोई व्यवस्था नहीं हो सकी।

मैंने हँसकर कहा—इसमें कठिनाई की क्या बात है? मैं सब प्रबन्ध अभी किए देता हूँ।

'पहले आप सब समझ तो लें। वे चाहते हैं कि जो लोग आमन्त्रित किए जाएँ, सभी **अभिषिक्त** हों और शक्तियाँ भी **अभिषिक्त** ही बुलाई जाएँ।'

मैंने कहा—यह पता लगाना कि कौन **अभिषिक्त** है, कौन नहीं, बहुत कठिन है। **शक्तियों** की बात उठाना तो बेकार होगा। खैर, एक सज्जन हैं। मैं उनसे मिलकर बताऊँगा कि प्रबन्ध हो सकेगा या नहीं। यह तो बताओ, **महन्त जी** कहाँ हैं और आप कहाँ ठहरे हैं?

'हम दोनों ही **अमेठी के बाग** में ठहरे हैं।'

मैंने कहा—अच्छा, आप चलें। पूजन-दर्शन करके मैं शीघ्र ही आता हूँ।

पण्डे के घर जाकर सामान रखकर **स्नान-पूजन** किया। फिर **माई के दरबार** में गया। दर्शन करने के बाद मैं **मैथिल जी** के यहाँ पहुँचा। मैंने सोचा कि **सेठ जी** का काम बिना उनकी सहायता के नहीं हो सकेगा। **मैथिल जी** विन्ध्याचल में प्रसिद्ध साधकों में थे और वे मुझ पर कृपा भी करते थे। उनके घर पहुँचने पर जब मैंने चरण-स्पर्श कर उनका अभिवादन किया, तब उन्होंने बड़े स्नेह से आशीर्वाद देकर कहा—अरे! **शर्मा जी** हैं! कब आए?

'आज की गाड़ी से अभी-अभी आया हूँ। मेरे एक मित्र भी आए हैं। उनका कुछ काम है।'

'कैसा काम है?'

'उनके साथ एक **महन्त जी** हैं। वे पूजन करना चाहते हैं। उसके लिए ऐसे साधकों की जरूरत है, जो **अभिषिक्त** हों। वे **शक्तियों** को भी बुलाना चाहते हैं।'

मैथिल महाराज ने हँसकर कहा—ऐसे साधक मिल गए?

'उसी के लिए तो मैं आपके पास आया हूँ।'

मैथिल महाराज ने सोचते हुए कहा—ऐसे तो यहाँ इने गिने ही लोग हैं और जो हैं, वे किसी के पूजन में आते-जाते नहीं। **अभिषिक्त शक्तियाँ** तो कदाचित् ही प्राप्त हो सकें।

'तब क्या किया जाए?'

'यही तो सोच रहा हूँ। **महन्त जी** कहाँ के निवासी हैं? क्या स्वयं वे **अभिषिक्त** हैं?'

'यह मैं क्या जानूँ? स्टेशन पर कलकत्ते के एक **सेठ जी** से भेट हो गई। वे मेरे मित्र हैं। **महन्त जी** के ही साथ आए हैं। उन्होंने मुझसे यह सब कहा। वे और **महन्त जी अमेठी के बाग** में ठहरे हैं। मैंने **सेठ जी** से कहा कि तुम चलो, मैं प्रयत्न करता हूँ। शायद काम हो जाए।'

'आपने यह व्यर्थ ही झंझट मोल ले ली। यह तो **माई का दरबार** है। बड़े-बड़े साधक यहाँ आते रहते हैं, परन्तु इस तरह का विभेद कोई नहीं करता। उनसे कहो, जो भी साधक मिलें, उनको लेकर अपना **पूजन-अर्चन** करें। यहाँ इस प्रकार का बितण्डा न खड़ा करें।'

मैं अब क्या कह सकता था! उन्हीं तक मेरी पहुँच थी। उनको प्रणाम कर चुपचाप चला आया। वहाँ से **अमेठी के बाग** में गया और **सेठ जी** को सारा हाल बताया। वे मुझे **महन्त जी** के पास ले गए। मैंने **महन्त जी** को सविधि प्रणाम किया। **सेठ जी** ने मेरा परिचय उन्हें दिया। उन्होंने आदर-पूर्वक अपने समीप ही बैठाया। उनसे भी मैंने **मैथिल महाराज** की बातचीत सारी-की-सारी कह दी। उसे सुनकर वे हँस पड़े। उन्होंने कहा—**शर्मा जी**, यहाँ आकर भी यदि मेरी मनो-कामना पूरी न होगी, तो फिर कहाँ होगी? क्या **मैथिल महाराज** से मेरी भेंट हो सकेगी?

'क्यों नहीं? आपकी आज्ञा हो, तो उन्हें बुला लाऊँ।'

'नहीं-नहीं। यह ठीक नहीं है। मेरा काम है। उनके यहाँ मैं स्वयं चलूँगा। क्या आप वहाँ मुझे ले चलेंगे?'

'मैं तैयार हूँ। चलिए। मैं उन्हें घर पर ही छोड़कर आया हूँ।'

महन्त जी उठ खड़े हुए। हम तीनों **मैथिल जी** के यहाँ पहुँचे। मैंने भीतर जाकर कहा— **महन्त जी** आपसे मिलने आए हैं।

मैथिल जी कहीं जाने को तैयार थे। वे मेरे साथ ही बाहर निकल आए। उन्होंने **महन्त जी** को बड़ी आव-भगत से लिया और अपना कमरा खोलकर भीतर ले गए। जब सब लोग बैठ गए तब **मैथिल जी** ने **महन्त जी** से हाथ जोड़कर कहा—आज्ञा दीजिए। मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

महन्त जी ने बहुत ही मधुर ढङ्ग से कहा—**पण्डित जी**, मेरा आपसे एक प्रश्न है। वह यह कि इस **दरबार** में आकर क्या मेरी इच्छा पूरी न होगी?

मैथिल जी बड़े तपाक से बोले—ऐसा तो यहाँ कभी नहीं हुआ है। इस **दरबार** से तो कोई निराश होकर कभी नहीं गया है!

मेरी ओर सङ्केत करके **महन्त जी** ने कहा—इन्होंने मुझसे जो कहा है, उससे तो मुझे यही जान पड़ा था कि मेरी इच्छा की पूर्ति न होगी।

'परन्तु **जगदम्बा** ने, जान पड़ता है, आपकी पुकार सुन ली है। अभी-अभी मुझे पता मिला है कि **अवधूत जी** आ गए हैं। उनकी कृपा से आपकी इच्छा के अनुसार आपका काम पूरा हो

जाएगा। मैं उनसे मिलने जा रहा हूँ। आप भी चलें और उनसे कहें। वे बहुत बड़े **महात्मा** हैं और यहाँ के सभी लोग उनका बहुत अधिक सम्मान करते हैं।'

महन्त जी ने कहा—यह आपकी कृपा है। हम लोग आपके साथ चलेंगे। चलिए। कहाँ चलना होगा?

'पहाड़ पर। **अष्ट-भुजा** के पास ही उनकी कुटिया है।' यह कहकर वे उठ खड़े हुए। हम लोग उनके साथ ही कमरे के बाहर निकल आए। सड़क पर पहुँचकर दो इक्के करके पहाड़ को चले। वहाँ पहुँचने पर पहले जाकर **'अष्ट-भुजा'** का दर्शन किया। उसके बाद **अवधूत-जी** की कुटी में गए। वे उस समय अकेले ही थे। हम सबने उनका अभिवादन किया। **मैथिल जी** ने हम लोगों का उन्हें परिचय दिया। **अवधूत महाराज** ने हम सबका कुशल पूछा। इसके बाद उनकी **मैथिल जी** से बातचीत प्रारम्भ हुई। उसी सिलसिले में उन्होंने **महन्त जी** के सङ्कल्प की बात कही। **अवधूत जी** ने कहा—बहुत सुन्दर विचार है।

फिर **महन्त जी** की ओर मुँह करके पूछा—आपके मठ में मैं रह चुका हूँ। आपके गुरु **स्वामी परमानन्द** ऊँचे दर्जे के साधक थे। आपके अच्छे दर्शन हुए। कहिए, आप कहाँ पूजन करेंगे? कितने साधकों को बुलाना चाहते हैं? यह **माई का दरबार** है। आपकी मनो-कामना अवश्य पूरी होगी।

महन्त जी ने पुलकित होकर कहा—तो आप मेरे यहाँ हो आए हैं! कदाचित् यह बहुत पहले की बात है। मुझे विश्वास है, आप मुझे अपनाएँगे। **माई की दया** से आपके अलभ्य दर्शन हो गए। अब मेरा उद्देश्य अवश्य ही सिद्ध होगा।

अवधूत जी की वेश-भूषा आडम्बर-हीन थी, बातचीत में भी वे बड़े मधुर जान पड़े। फलतः अवसर पाते ही मैंने विनम्रता के साथ पूछा—**शाक्त-धर्म** का आज यह पराभव क्यों है?

मेरी ओर मुँह करके **अवधूत-जी** ने गम्भीरता से कहा—पराभव! किसका? **शाक्त-धर्म** का? ऐसा तो नहीं है। घर-घर **चण्डी का पाठ** होता रहता है, समय-समय पर **शत-चण्डियाँ** और **सहस्र-चण्डियाँ** होती रहती हैं। जो धर्म **वैदिक धर्म** का स्थानापन्न होकर सदियों से आर्य-जाति को सजीव बनाए हुए है, उसका पराभव! भाई, सोचो तो, यह क्या कह रहे हो? मैंने इस पवित्र भूमि का पर्यटन किया है। जहाँ-जहाँ गया हूँ, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र—यहाँ तक कि चोरों और बदमाशों तक को **जगदम्बा के नाम का श्रद्धा के साथ स्मरण** करते पाया। मैं तो यह कहूँगा कि जैसा शास्त्र में यह इस **'युग का धर्म'** निर्धारित किया गया है, वैसा ही इसका देश में व्यापक रूप से प्रचार है। मेरी तो यह दृढ़ धारणा है कि **'शाक्त-धर्म'** आज कहीं अधिक उन्नत दशा में है। उन्नत क्या—**वल्लभाचार्य, तुलसीदास** और **गुरु गोविन्दसिंह** आदि महात्माओं ने तो **'शाक्त-धर्म'** को जनता का धर्म बना दिया है। **सीता-राम, राधा-कृष्ण** और **चण्डी** की जो महिमा आज सारे देश में व्याप्त है, वह क्या **'शाक्त-धर्म'** के पराभव का लक्षण है? और अब रही **'शाक्त-धर्म'** की विचार-धारा की बात, सो इधर उसकी जितनी महिमा बढ़ी है, वह कम उत्साह-जनक नहीं है। **उडरफ साहब** जैसे विदेशी निष्ठावान् व्यक्तियों का **'शाक्त-साधना'** को अङ्गीकार करना उसके महत्त्व को ही सूचित करता है और यह उसका महत्त्व ही है कि जगह-जगह से सु-सम्पादित होकर **'तन्त्र-साहित्य'** आज प्रकाश में आ रहा है और आपने जो उसकी निन्दा होने की बात कही है, सो निन्दा किसकी नहीं है? **वेद, बाइबिल, कुरान**—किसकी निन्दा नहीं की गई है? यह तो आसुरी सम्पत्ति का प्रभाव है। यदि यह न हो, तो दैवी सम्पत्ति का अनुभव कैसे हो?

यह कहते-कहते **अवधूत जी** गद्गद् हो गए। उन्होंने अपना कथन ऐसे आवेश के साथ समाप्त

किया कि मैं दङ्ग रह गया और फिर मैं उनसे कुछ न पूछ सका। उन्होंने **मैथिल जी** को सम्बोधित करके कहा—**मैथिल जी**, मैं **रामेश्वर जी** गया था। कहते हैं दक्षिण में **'शाक्त-धर्म'** का वैसा प्रचार नहीं है, पर यह भ्रम है। **'कन्या-कुमारी'** और मदुरा की **'मीनाक्षी'** के झण्डे जहाँ आकाश में लहरा रहे हों, वह **'शाक्त-भूमि'** नहीं, तो और क्या हो सकती है? मैं तो भाई, यही कहूँगा कि **'शाक्त-धर्म'** दिन-प्रतिदिन उन्नति ही कर रहा है।

यह देखकर कि सूर्यास्त का समय समीप आ रहा है, **महन्त जी** ने कहा— मुझको क्या आज्ञा होती है?

'आज्ञा क्या? आपकी आज्ञा का पालन होगा। क्यों **मैथिल जी?'**

मैथिल जी ने कहा— जो आदेश करेंगे, वही होगा।

अवधूत जी ने कहा—परसों का दिन ठीक होगा। **अमावास्या** भी है। सभी लोगों को तब तक सूचना भी हो जाएगी।

मैथिल जी ने कहा—आपका विचार बहुत ठीक है और स्थान?

'आपका घर सबसे अच्छा है। **माँ के चरणों के पास ही पूजन** करना उत्तम होगा।'

इन बातों से **महन्त जी** को बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा— मेरी मनो-कामना आपने पूर्ण कर दी। अब आज्ञा दीजिए। **पूजा की बेला** आ गई है। कल फिर सेवा में उपस्थित होऊँगा।

'सो यह नहीं होगा। यहीं **पूजा-अर्चा** जो कुछ करनी हो, कीजिए। सब प्रबन्ध हो जाएगा।' यह कहकर **अवधूत जी** ने मेरी ओर देखकर कहा— **महन्त जी** तो मेरे मित्र के उत्तराधिकारी हैं, **सेठ जी** उनके भक्त हैं, **मैथिल जी** को मैंने बुलाया ही है। यदि आप चाहें, तो इन महानुभावों का आतिथ्य करने का सौभाग्य पा सकता हूँ।

मैंने कहा—आपका यह अनुरोध कम-से-कम मेरे सौभाग्य का सूचक है।

यह कहकर मैंने **महन्त जी** की ओर देखा। उन्होंने कहा— इसमें क्या सन्देह। **अवधूत जी** के आदेश का हम कैसे पालन न करेंगे?

उनसे ऐसा कहकर हम लोग **भैरव-कुण्ड** पर चले गए और वहाँ से सन्ध्या-वन्दन आदि से निवृत्त होकर **अवधूत जी** की कुटी में फिर आ गए। तब तक काफी अँधेरा हो गया था। **अवधूत जी** भी अपने **पूजन-यजन** में लगे हुए थे। कोई आध घण्टे के बाद वे **पूजा से निवृत्त** हुए। उन्होंने कहा —अच्छा, अब आओ, चलें। **पूजन** का प्रबन्ध अन्यत्र किया गया है।

यह कहकर वे उठकर चल पड़े। उनके पीछे **मैथिल जी** हो गए और उनका अनुसरण हम लोगों ने किया। **विन्ध्य-गिरि** पर जो बँगले इधर कुछ समय से नए-नए बने हैं, उन्हीं एक में हम लोग पहुँचे। गृह-स्वामी ने हम लोगों का उठकर स्वागत किया। यहाँ **अवधूत जी** ने **जगदम्बा का पूजन** किया और हम सब लोगों को प्रसाद मिला। इस अवसर पर पूजा के सम्बन्ध में **महन्त जी** से उनकी खूब बातें हुईं। **महन्त जी** ने **अवधूत जी** से सबसे पहले यही प्रश्न किया कि **'बिना शक्ति के क्या यह पूजन हो सकता है?'**

अवधूत जी ने कहा—क्यों नहीं हो सकता? अभी किया ही है। प्रतिनिधि किस दिन के लिए हैं? फिर **शक्ति** के सहित पूजा करने की क्षमता तो चाहिए।

'क्षमता तो पूजा करने से ही प्राप्त होगी।' **महन्त जी** ने हँसकर कहा।

'ठीक है, पर सर्वाङ्ग-पूर्ण पूजा करने के लिए धीरे-धीरे ही अग्रसर होना पड़ेगा। लोग **'भूत-शुद्धि'** तक करते नहीं, **'पात्र'** कैसे स्थापित किए जाते हैं, उनका **'विसर्जन'** कैसे किया जाता है, इन बातों का ज्ञान नहीं रखते, पर **'चक्रेश्वर'** बनेंगे अवश्य!'

मैथिल जी ने कहा—आप ठीक कहते हैं। पिछले **'नवरात्र'** में एक राजा साहब ने बड़े आयोजन के साथ यहाँ अर्चन किया था। मुझे भी उसमें जाना पड़ा था। मैंने देखा कि **चक्रेश्वर जी** ने **'प्रोक्षणी पात्र'** ठीक जगह पर स्थापित नहीं किया था और **पात्रों के विसर्जन** में भी उन्होंने गड़बड़ कर दिया। भूतनाथ ने जब **'वीर-पात्र'** का अपना भाग माँगा, तब वे उसकी बात ही न समझ सके।

सेठ जी ने पूछा—उन्होंने कैसा भाग माँगा था?

अवधूत जी ने कहा—पूजन में जो **'पात्र'** स्थापित किए जाते हैं, उनके **'विसर्जन'** का विधान है। **'वीर-पात्र'** का विसर्जन इस प्रकार होता है कि उसका द्रव्य उपस्थित वीरों को वितरित कर दे।

महन्त जी बोले—इस प्रकार पूजन तो सभी नहीं कर सकते। अभी आपने पूजन में **'आवाहन'** आदि जिस ढङ्ग से किया है, वह कदाचित् ही कोई जानता होगा। **'पाँच मुद्राएँ'** तो मुझे मालूम हैं, परन्तु उसके बाद आपने किस तरह क्या किया, वह सब मेरी समझ में नहीं आया।

'यह सब उतना कठिन नहीं है। सीखने से सब आ जाता है। आपको यदि अपने **गुरुदेव का सत्सङ्ग** अधिक समय तक मिला होता, तो यह क्या और भी बहुत कुछ मिल गया होता। वे एक ऊँची श्रेणी के साधक थे। यही नहीं, वे **नित्य पूजन** करते थे और **सर्वाङ्ग-पूर्ण पूजन** करते थे और सच पूछो, तो हम सबको **सर्वाङ्ग-पूर्ण पूजन** ही करना चाहिए, परन्तु हम तो देखते हैं कि इस ओर से वे साधक तक कुछ समय के बाद उदासीन हो जाते हैं, जिन पर **जगदम्बा की कृपा** हो जाती है।'

'इसी से मैं सब किसी के साथ पूजन नहीं करता हूँ। जो कुछ अपने को ज्ञात है, उसी से सन्तुष्ट रहकर **माँ की सेवा** में लगा रहता हूँ।'

'पर मैं आपके इस विचार से सहमत नहीं हूँ। आप तो **मठाधीश** हैं। यदि इस प्रकार दूर-दूर रहेंगे, तो लोक-संग्रह का काम कैसे होगा? मैं तो **शाक्त-साधकों** को बड़ी छूट देता हूँ। जिसने **गुरु-मुख से माँ का बीज-मन्त्र** प्राप्त कर लिया, वह तो मेरे निकट **शिव-तुल्य** हो गया। इसमें भेद-भाव करना ठीक नहीं। यदि हम लोग सविधि पूजन करेंगे और उसमें यदि हम उन्हें भी शामिल करेंगे, तो हानि किसी की नहीं होगी।'

पूजन समाप्त हो गया था। हम लोगों ने विदा माँगी। **अवधूत जी** ने गृह-स्वामी की ओर देखा। उन्होंने कहा—मोटर तैयार खड़ी है।

उसी पर सवार होकर हम लोग **विन्ध्याचल** आए। मार्ग में **महन्त जी** ने **अवधूत जी** की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि कल भी उन्हीं के आदेशानुसार पूजन का आयोजन होगा। हम लोगों को **अमेठी के बाग** के पास उतारकर मोटर लौट गई। मैं **मैथिल जी** के साथ उनके घर चला गया।

दूसरे दिन मुझे कलकत्ते से तार मिला। फलतः मैं तार लेकर **बिहारीलाल जी** के पास गया और कहा—देखिए, यह तार आ गया है।

बिहारीलाल जी ने तार देखकर कहा—तब तो तुम्हें जाना ही पड़ेगा। कोई चिन्ता नहीं। आपकी कृपा से सब प्रबन्ध हो ही गया है।

महन्त जी से बिना मिले ही उनसे विदा माँगकर मैंने स्टेशन की राह ली। मुझे इस बात का अवश्य दुःख हुआ कि मैं उस **पूजा** के लिए रुक न सका।

* * *

साधक का संवाद

४ ब्रह्म-भाव

मैं नहीं समझता था कि वज्र देहात में भी **शाक्त** और सो भी **अच्छे शाक्त** के दर्शन होना सम्भव है, परन्तु इस बार देश की यात्रा में वह असम्भव सम्भव हो गया। गर्मी के दिनों में जब मैं गाँव जाता हूँ, किसी-न-किसी की बारात में शामिल होना ही पड़ता है। इस बार जब गर्मियों में गया, तब बारातों की धूम मची हुई थी। कई निमन्त्रणों को तो मैं टाल गया, पर **ठाकुर चन्द्रपाल सिंह** के निमंन्त्रण को नहीं टाल सका। उनके एक-मात्र पुत्र का विवाह था और वे अपने सारे हौसले उसके विवाह में पूरे कर लेना चाहते थे। वे मेरे बचपन के मित्र थे, इसके सिवा हमारे जवार के प्रतिष्ठित रईस भी थे, अतएव इच्छा न होते हुए भी मुझे उनकी बारात में जाना ही पड़ा।

देहात की क्या और क्या शहर की, मुझे बारातें कभी पसन्द नहीं हुईं और देहात की बारातें तो कष्ट-प्रद होती ही हैं। एक तो गर्मी के दिन, दूसरे बहली की सवारी। दिन भर की यात्रा में कचूमर निकल गया। सूर्यास्त होते-होते बारात अपने ठिकाने पहुँच गई थी, इससे कम-से-कम मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

जनवासा गाँव के बाहर वहाँ के स्कूल में दिया गया था। स्कूल बाग के किनारे पर था, अतएव उसके पास ही बाग में कुछ खीमे भी लगाए गए थे, जिनमें **ठाकुर साहब** और उन्हीं की भाँति के लोग ठहरे, परन्तु उस भीड़-भड़क्के में बारात के दो दिन बिताने का मैं साहस न कर सका, अतएव गाँव के बाहर एक भलेमानस की चौपाल में जाकर मैंने अपना डेरा डाल दिया। गृह-स्वामी पुराने ढङ्ग के ब्राह्मण थे, उन्होंने बड़े सद्भाव के साथ सारी की सारी चौपाल मेरे लिए खाली कर दी। मेरे नौकर **रामनाथ** ने शीघ्र ही मेरा बिस्तर लगा दिया और मैं हाथ-पैर धोकर चुपचाप बिस्तर पर पड़ गया। थक ही उस तरह गया था।

एक हल्की नींद ले लेने के बाद मैं उठा और शौच आदि से निवृत्त होकर **'पूजा-पाठ'** किया। इसके बाद भोजन किया।

दूसरे दिन सवेरे ही उठकर मैंने **स्नान-पूजा** आदि से सबसे पहले निवृत्त हो जाने की व्यवस्था की। **पूजा** करके जब मैं चारपाई पर आकर बैठा, तब उस घर के **पण्डित जी** धीरे-धीरे आकर मेरे पास खड़े हो गए। उन्हें अपने पास आते देखकर मैंने उठकर उनको नमस्कार किया और बड़े आदर से उन्हें सिरहाने बैठाया। वे मुझसे वय में ज्येष्ठ थे और मुखाकृति से पढ़े-लिखे प्रतिष्ठित से जान पड़ते थे। बैठ जाने के बाद मैंने विनम्रता से कहा—मेरे कारण आपको असुविधा हुई है। उसके लिए क्षमा माँगता हूँ। मैं बारात में ठहर सकता था, परन्तु मुझे वहाँ भोजन आदि की असुविधा होती।

उन्होंने कहा—असुविधा किस बात की। मैंने तो सारी बारात को ठहरने के लिए अपना सारा घर पहले से ही खाली कर रखा है, परन्तु आपके **ठाकुर साहब** ने गाँव के बाहर ही ठहरने का निर्णय किया और उनका यह आदेश हम लोगों को बहुत विलम्ब से मिला। अतएव जल्दी-जल्दी में जैसा चाहिए था, वैसा प्रबन्ध नहीं किया जा सका।

थोड़ी देर की बातचीत में हम दोनों ही एक-दूसरे से काफी परिचित हो गए। अन्त में उन्होंने कहा —कल रात में आपने जो **स्तव-पाठ** किया था, उससे व्यक्त होता है कि आप **शाक्त** हैं।

मैंने निवेदन किया—हाँ, मैंने **शाक्त-धर्म की दीक्षा** ली है। आपके प्रश्न से जान पड़ता है कि आप भी **शाक्त** हैं।

उन्होंने कहा—हाँ, आपका अनुमान ठीक है। मैं **शाक्तों का सेवक** हूँ। **गुरुदेव की कृपा** से मुझे भी वह परम पदार्थ अनायास ही मिल गया।

मैंने कहा—परन्तु इस वज्र देहात में **शाक्त के दर्शन** तो मुझे कभी नहीं प्राप्त हुए। मैं इस जवार में बहुत घूमा-फिरा हूँ।

'आप तो जन्म भर कलकत्ते में रहे। भेंट हो तो कैसे? आपके गाँव के लोग हम लोगों को जानते हैं। पहले हमारे यहाँ के लोगों का वहाँ आना-जाना भी होता था।'

'तो क्या यहाँ आपके सिवा और लोग भी **शाक्त** हैं? और अब आप लोग हमारे गाँव क्यों आते-जाते नहीं हैं?'

'यदि आस-पास के लोगों को भी गिन लें तो काफी अधिक संख्या है। सब मिलाकर कोई ३०-४० घर **शाक्तों** के हैं, जिनमें ७-८ घरों में तो बहुत अच्छे ढङ्ग से **भजन-पूजन** होता रहता है। आपके गाँव का आना-जाना छूटने का विशेष कारण है और वह यह कि वहाँ अब सब **सिद्ध-महात्मा** ही हो गए हैं और हम लोग ठहरे **साधारण उपासक!** इससे हम लोगों का आना-जाना बन्द हो गया।'

'हमारे गाँव में **सिद्ध महात्मा** तो कोई नहीं है। आपके कथन का आशय क्या है? और क्या आप लोग **भगवती के दर्शन** करने भी नहीं जाते हैं?'

'ऐसा कैसे हो सकता है? कई लोग दर्शनार्थ तो प्रायः जाया करते हैं। कई **नवरात्रों** में जाकर वहाँ **पाठ-पूजा** भी किया करते हैं, परन्तु उनमें से कोई वहाँ के **शाक्तों के पूजन-अर्चन** में भाग नहीं लेता। आप जानते हैं, पहले वहाँ एक ही दल था। अब कई दल हो गए हैं। ऐसे झमेले में कौन पड़े? फिर **सिद्ध महात्मा** लोग ठीक ढङ्ग से न तो अर्चन करते हैं और न इसकी ही परवा करते हैं कि किसको शामिल करना चाहिए, किसको नहीं। जो भी कोई आकर द्रव्य या पदार्थ भेंट कर दे, उसी का परिवेषण कर लिया जाता है। ऐसा रङ्ग-ढङ्ग जब देखा, तब हम लोगों ने अलग रहने का निश्चय किया और अब लोग वहाँ आमन्त्रित होने पर भी किसी के भी पूजन में शामिल नहीं होते।'

'परन्तु **शास्त्र का आदेश** है कि पूजन में तो बिना बुलाए ही जाना चाहिए और आमन्त्रित होने पर तो जाना आवश्यक हो जाता है।'

'आप ठीक कहते हैं, परन्तु **पूजन** हो तब न! हमने वहाँ कई बार देखा है कि **पूजन** का ढोंग भर होता है। **पूजन** तो अलग रहा, द्रव्यों का ठीक ढङ्ग से **शोधन** तक नहीं होता। बस, आचार्य जी **'ह्रीं हूँ फट्'** आठ-दस बार

इधर-उधर करके **धूप-दीप-नैवेद्य** कर **तर्पण-चर्वण** आरम्भ कर देते हैं! यह भी कोई **पूजा-अर्चा** है?'

कुछ-कुछ हत-प्रभ-सा होकर मैंने निवेदन किया—परन्तु यह बात आप वहाँ के सभी साधकों के सम्बन्ध में कहकर उनके साथ अन्याय करते हैं। यदि आप कभी पधारें तो मैं आपको दिखाऊँ कि वहाँ के साधक अच्छे ढङ्ग से पूजा करना जानते ही नहीं, किन्तु करते भी रहते हैं।

हाँ, आपका कथन ठीक हो सकता है। उस प्राचीन क्षेत्र में ऐसे श्रेष्ठ साधकों का होना सर्वथा स्वाभाविक है। मेरा कथन तो वहाँ के **सिद्ध-महात्मा** माने जानेवालों के सम्बन्ध में है, जो अपनी-अपनी मण्डली बनाए हुए **शाक्त-धर्म** की निन्दा का प्रचार कर रहे हैं।'

अपनी झेंप मिटाते हुए मैंने कहा— यह लाञ्छन आपका ठीक नहीं है। जिन व्यक्तियों की ओर आपका सङ्केत है, आप जानते होंगे, उनके पूर्वज किस श्रेणी के साधक रहे हैं और उनके कारण उस क्षेत्र में ही नहीं, इस प्रान्त में **शाक्त-धर्म का गौरव** बढ़ा है। परिस्थितियों के कारण यदि उनके वंशज आज उनकी मर्यादा को नहीं स्थिर रख सके तो यह खेद की बात है, परन्तु यह नीति समीचीन नहीं है कि उनको त्याग करके उनको और पतनोन्मुख होने दिया जाए।

'तो उनकी देख-भाल आप ही लोग कर सकते हैं। हम बाहर के लोग ऐसे झमेले में कैसे पड़ सकते हैं?'

'हम लोगों का उनसे कुछ ऐसा सम्बन्ध है कि हम लोग कुछ भी कह-सुन नहीं सकते। हाँ, आप लोगों का उन पर प्रभाव भी पड़ सकता है और वे आपका लिहाज भी कर सकते हैं।'

'हम लोगों ने यह सब करके देख लिया है। जब हम लोगों की सुनवाई नहीं हुई तब किनारा कर आए और अब तो मैं कभी आता-जाता भी नहीं। यहाँ जो दो-चार आत्मीय आ जाते हैं, उन्हीं के साथ **अर्चन** होता रहता है, परन्तु अब तो माँ का यह आदेश-सा मिल रहा है कि यह सब भी छोड़-छाड़कर केवल **माँ के स्वरूप का चिन्तन** ही किया करें।'

हम दोनों का वार्तालाप हो ही रहा था कि इतने में एक सज्जन वहाँ आ गए और उन्होंने **पण्डित जी** का चरण-स्पर्श कर कहा—**दादा जी, कुँवर जी** आपके दर्शन करना चाहते हैं।

उन्होंने आगन्तुक से कहा—**कुँवर** से कह देना कि आज मैं कहीं आ-जा नहीं सकूँगा। मेरे यहाँ एक अतिथि आए हैं। यदि विशेष आवश्यकता हो, तो खुद ही आ जाएँ मेरे अतिथि से मिलकर वे भी प्रसन्न होंगे।

इस प्रकार उस आगन्तुक को विदा करके उन्होंने मुझसे कहा—ये **कुँवर जी जगदम्बा के भक्त** हैं और **ब्रह्म-भाव के उपासक** हैं। इन्होंने **विन्ध्याचल** में एक **अवधूत** का बहुत सत्सङ्ग किया है और **शाक्तों** का बड़े सत्कार से संग्रह करते हैं।

मैंने कहा—**दादा जी, ब्रह्म-भाव की उपासना** की बात तो मैं नहीं समझ सका।

वे मधुर हास्य करते हुए बोले—**ब्रह्म-भाव** तो प्रधान है ही, **ब्रह्म** और **महा-माया** में केवल नाम-भेद है। वे **पिता-भाव** से उसी तत्त्व को ग्रहण करते हैं, जिसे हम लोग **मातृ-भाव** से ग्रहण करते हैं। वास्तव में बात एक ही है। भाव और नाम का भेद है।

मैंने कहा—यही बात तो मेरी समझ में नहीं आ रही है। जिस **महा-शक्ति** के अभाव में

ब्रह्म निरा कोयला रह जाता है, केवल उसके नाम और भावं को ग्रहण करना कैसे ठीक होगा?

'परन्तु **ब्रह्म** में **महा-शक्ति का अभाव** कहाँ होता है। दोनों तो एक ही वस्तु के गुण-भेद से दो नाम मात्र हैं। ऐसी भावना ऊँची-श्रेणी के साधक में होनी चाहिए। हमारी यह सारी **पूजा-आराधना** वस्तुतः **ब्रह्म की ही पूजा-आराधना** है। उस **ब्रह्म** की जो **महा-शक्ति** है, उसका और **ब्रह्म** के अनिर्वचनीय रूप का प्रतीक है। **कलश** में हम **ब्रह्म** के इसी रूप की **आनन्द-भैरव** और **आनन्द-भैरवी** के नाम से पूजा करते हैं।'

'तब फिर हमें इस **कलश की पूजा** से ही सन्तोष कर लेना चाहिए। **यन्त्रार्चन** की तब क्या आवश्यकता है?'

उन्होंने उसी प्रकार हँसते हुए कहा—'इस प्रकार अधीर होने से कैसे काम चलेगा? वह तो करना ही पड़ेगा। अपने **इष्ट की आराधना** के बिना कैसे काम चलेगा? उस महा-भाव की प्राप्ति तो उसी की आराधना से होगी। हमारी ये **दश महा-विद्याएँ** अपने भेदों के सहित उस **आदि-शक्ति** से सीधा उत्पन्न होने के कारण उसके सबसे अधिक समीप हैं। अतएव उनकी या उनके भेदों की साधना से हम अधिक शीघ्रता से उस **आदि-शक्ति का कृपा-भाव** प्राप्त कर सकते हैं। **सदाशिव** के इस पवित्र विधान में हमें स्वप्न में भी शङ्काशील नहीं होना चाहिए।' यह कहते-कहते वे भावावेश में आ गए और उनकी मुखाकृति से मुझे यह पहली बार भासित हुआ कि वे **जगदम्बा** के वास्तव में **अनन्य भक्त** हैं। मैंने बड़ी विनम्रता से कहा— मैं शङ्कालु नहीं हूँ। बात चलने पर ऐसा कह गया हूँ।

उन्होंने कहा— नहीं, नहीं, बात चलने पर भी कम-से-कम किसी साधक को तो ऐसा भूलकर भी नहीं कहना चाहिए। ऐसी उक्तियों से उसकी साधना को हानि पहुँचती है।

'आप बहुत ठीक कहते हैं, परन्तु **शाक्तों** की तो अपने **तन्त्रों** पर पूर्ण श्रद्धा है। दूसरों की हम नहीं जानते।'

'यदि ऐसा न होता तो आपको यह कहने का अवसर न मिलता कि इस वज्र देहात में **शाक्त** कहाँ से आए। मेरे लड़कपन में इसी देहात में गाँव-गाँव अच्छे-से-अच्छे **साधक** थे और सो भी सभी वर्गों के, परन्तु मेरे देखते-देखते ऐसा परिवर्तन हुआ कि **शाक्तों** का लोप-सा हो गया। यदि आप पता लगाएँ, तो अधिकांश लोग इस बात से इनकार नहीं करेंगे कि उनके पूर्वज **शाक्त** थे और उनके यहाँ **बलिदान** भी होता था, परन्तु सब परिपाटी ही बदल गई।'

'आपके कथनानुसार जब दो-तीन पीढ़ी पहले **'शाक्त-धर्म'** का अच्छा प्रचार था, तब आज उसका यह अभाव क्यों हो गया है?'

'वस्तुतः यह **धर्म-ग्लानि का काल** है। सभी **धर्मों का पराभव** हो गया है। हमें तो भाई, इतने से ही सन्तोष है कि ऐसे भीषण समय में यत्र-तत्र साधकों के दर्शन तो हो जाते हैं। मैंने अपने युवा-काल में देश का काफी भ्रमण किया है और भाँति-भाँति के मनुष्यों के सङ्ग रहा हूँ। मैंने देखा है कि अन्य धर्मानुयायियों की अपेक्षा हम **हिन्दू** लोग बहुत गिर गए हैं।'

'ऐसा क्यों हुआ? क्या आपने कभी इस पर भी विचार किया है?'

'हाँ, इस दुरवस्था पर प्रायः सोचता रहता हूँ। मुझे तो यही जान पड़ता है कि हमारी **परम्परा** भङ्ग हो गई है और अपनी **प्राचीन संस्कृति** से हमारा सम्बन्ध टूट गया है। इस

अवस्था का मुख्य कारण है अपने **पवित्र ग्रन्थों पर श्रद्धा** का न होना।'

'परन्तु हम तो चारों ओर इस समय **धर्म ही धर्म की पुकार** सुन रहे हैं। यह सब क्या है?'

'यह सब ढोङ्ग है। **धर्म की पुकार** करने से **'धर्म का ज्ञान'** नहीं होता। **धर्म** तो जीवन का अङ्ग है। जीवन के व्यवहारों में उसे प्रतिलक्षित होना चाहिए, परन्तु हमारे जीवन की धारा में **विचारों का व्यभिचार** हो रहा है। यहीं एक कायस्थ सज्जन रहते हैं, आत्मीय भी हैं। परन्तु बातें सुनो तो दङ्ग रह जाओगे। हर समय **उमर खैयाम** और **हाफिज** की सूक्तियों की चर्चा करते मिलेंगे। **अरबी** और **फारसी** के शब्दों का तो इतना शुद्ध उच्चारण करेंगे कि जन्म-जात मुसलमान भी सुनकर चकित रह जाएगा, परन्तु **'प्रसाद'** को **परसाद** ही कहेंगे, **'ब्रह्मा'** को **बरमा**। उनसे **तुलसी** या **सूर** आदि के सम्बन्ध में बातें करना चाहो, तो वह सब अनसुनी करके **गालिब** और **जोक** के तराने सुनाने लगेंगे। जब यह हाल है, अपनी **परम्परा** और **संस्कृति** के प्रति ऐसा उपेक्षा-भाव हममें आ गया है, तब हमारी दुरवस्था नहीं हो जाएगी तो और फिर क्या होगा?'

'परन्तु हम तो यही देख रहे हैं कि लोग इस अवस्था को **उन्नत अवस्था** कह रहे हैं।'

'ठीक है! और कह ही क्या सकते हैं? आज जब हमारे पढ़े-लिखे लोग दूसरों के ढाँचे में ढलते जाना ही अपने लिए तथा देश के लिए श्रेय समझते हों, तब वे उसे उन्नत होना न कहेंगे, तो फिर क्या कहेंगे? आज हमारा प्रबुद्ध समाज **अपनी संस्कृति** से जिस प्रकार विमुख हो गया है, ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था और यही सबसे बड़े सङ्कट की बात है।'

'आप **परम्परा** और **संस्कृति** का नाम तो लेते हैं, पर उसकी व्याख्या नहीं करते हैं। क्या आप यह चाहते हैं कि जिस प्रकार **वैदिक युग** में लोग अपना जीवन-यापन करते थे, वैसे ही आज भी लोग करें? क्या ऐसा आज के युग में सम्भव है?'

'नहीं। मैं यह कब कहता हूँ कि वैसा हो। उस युग के जीवन का अनुधावन आज के लोग कर भी तो नहीं सकते हैं। **परम्परा** और **संस्कृति** की व्याख्या क्या की जाए, हमारी परम्परा **'राग'** की रही है, **'विराग'** की नहीं। **'बलवान् बनकर इस संसार का अपना कर्तव्य-पालन करते हुए भोग करो'**। यह विचार-धारा **यहाँ की संस्कृति का मूल** रहा है और इसी सिद्धान्त को आगे रखकर **सदाशिव** ने वर्तमान युग के लिए **तन्त्रों का आदेश** किया है, परन्तु हम अपनी परवशता के मोह में पड़ जाने से इस तथ्य को भूल गए हैं।'

उनका वाक्य पूरा न हो पाया था कि एक बैलगाड़ी खड़खड़ाती हुई उनके दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई। उसे देखकर उन्होंने कहा—'लो, **कुँवर जी** आ ही गए।' यह कहकर वे उठ खड़े हुए, उनके साथ ही मैं भी खड़ा हो गया। गाड़ी से शीघ्र ही उतर **कुँवर जी** ने आकर **पण्डित जी** के चरण-स्पर्श किए और मेरी ओर दृष्टिपात करके जहाँ-के-तहाँ खड़े रहे। **पण्डित जी** ने उन्हें सादर एक आसन दिया, जिस पर वे बैठ गए। इसके बाद उन्हें मेरा परिचय दिया। यह जानकर कि मैं भी ब्राह्मण हूँ, उन्होंने मुझे प्रणाम किया और कहा—**दादा जी** का उत्तर पाकर मैंने सोचा कि चलकर आपके भी दर्शन करूँ।

इस पर **कुँवर जी** को **पण्डित जी** ने मेरा

विशेष परिचय दिया और यह भी कहा कि कलकत्ते में इनकी दूकान है।

कुँवर जी ने कहा—'यह तो बड़ी ही खुशी की बात है। मैं **गुरुदीन** की बात से ही समझ गया था।' मेरी ओर मुँह करके कहा—'आप भी पधारने की कृपा करें।' यह कहकर उन्होंने **पण्डित जी** से कहा—**स्वामी जी** आ गए हैं और अपने स्थान में ही आज **पूजा** करेंगे। प्रायः सभी को बुलाया है। उनकी बड़ी इच्छा है कि आप जरूर आएँ और इन **पण्डित जी** को भी साथ लाने की कृपा हो।

दादा जी ने कहा—**गुरुदीन** ने तो यह सब नहीं कहा था। आपको व्यर्थ दौड़ना पड़ा। हम दोनों ही ठीक समय पर आ जाते।

'आपके यहाँ आने-जाने में मुझे कभी कष्ट नहीं होता। इसके सिवा यहाँ आज व्यवहार भी करना था। आज्ञा दें तो वहाँ से निपट आऊँ।' यह कहकर वे उठकर खड़े हो गए।

कुँवर जी के चले जाने पर उन्होंने कहा—'अच्छा तो आप भी जल-पान आदि करें। मैं भी अपना **पूजा-पाठ** कर लूँ। बारातियों से छुट्टी ले लेना। आज के **अर्चन** में चलना होगा। और न सही, इस वज्र देहात के **शाक्तों** से आपकी भेंट-मुलाकात ही हो जाएगी।' यह कह कर हँसते हुए वे अपने घर के भीतर चले गए। मैं भी उठकर **जनवासे** चला गया।

सन्ध्या-समय हम लोगों ने **स्वामी जी** के स्थान को प्रस्थान किया। हम लोग पाँच आदमी थे। तीन नये आए हुओं में एक तो यही **मुँशी जी** थे, दूसरे एक **नव-युवक ब्राह्मण** देवता थे, जो पढ़े-लिखे तो नहीं—खेतिहर जान पड़ते थे, तीसरे एक **वैश्य सज्जन** थे, जिनकी गाँव में फुटकर चीजों की दुकान थी। **पण्डित जी** के ये तीनों ही बड़े भक्त थे और वे भी इनका स्नेह करते थे। मार्ग में उन्होंने मुझे बताया कि ये तीनों ही **खानदानी शाक्त** हैं और इनके घर के सभी लोग **जगदम्बा के बड़े भक्त** हैं। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने **स्वामी जी** का भी परिचय दिया। उन्होंने कहा— **स्वामी जी** को उनके शिष्य भक्ति-वश **'स्वामी'** कहते हैं। वास्तव में वे एक गृहस्थ ब्राह्मण हैं। वे हमारे गाँव के **ठाकुर साहब** के **दीक्षा-गुरु** हैं। विवाह के सिलसिले में वे भी आए हैं। **कुँवर जी** इन्हीं **ठाकुर साहब** के पट्टीदार हैं। वस्तुतः इन्हीं ठाकुर लोगों के ही कारण यहाँ **शाक्त-धर्म** का थोड़ा-बहुत प्रचार है। इन **स्वामी जी** के पूर्वज **तन्त्र-विद्या** के अच्छे ज्ञाता तो थे ही, उच्च कोटि के साधक भी थे। अपने बचपन में मैंने इनके पिता को देखा है और गाँव के वृद्धों से इनके पूर्वजों की कीर्ति-गाथा भी सुनी है परन्तु अब इस युग में वे सब बातें यदि कहीं जाएँ तो लोगों को विश्वास ही न हो। मेरे देखते-देखते बड़ा भारी परिवर्तन हो गया। इस दशा में हमारे ये **स्वामी जी** गनीमत हैं। इनके पूर्वज पहले यहीं पास के एक गाँव में रहते थे। परन्तु अपने एक शिष्य की प्रेरणा से इनके **पिता जी** लखनऊ चले गए। तब से वहीं रम गए। **ठाकुर साहब** के विशेष आग्रह पर कभी-कभी यहाँ आ जाते हैं। ये भी अपने पिता की ही भाँति शान्त और शीलवान हैं परन्तु उनकी भाँति तेजस्वी साधक नहीं।

इस प्रकार बातचीत करते हुए हम लोग **स्वामी जी** के स्थान में पहुँच गए। उस समय तक कृष्ण पक्ष की तृतीया का चन्द्रमा आकाश में उदय हो चुका था। उसके उज्ज्वल प्रकाश में **स्वामी जी** का आश्रम और उसके पास का भव्य **शिवालय** हमें साफ-साफ दिखाई दिया। अधिक

समीप जाने पर उन दोनों की सुन्दरता और भी निखर पड़ी। वह स्थान और **शिवालय** दोनों ही एक पक्के सरोवर के किनारे पर बने थे और वे दोनों ही उसके अङ्ग-सा थे। दूर बस्ती के एकान्त में उस निशा में उस स्थान पर पहुँचकर मुझे तो बहुत ही प्रसन्नता हुई।

पण्डित जी ने मुझसे कहा—'यह बहुत ही प्राचीन स्थान है। बड़े-बड़े महात्माओं ने वर्षों रहकर यहाँ तपस्या की है। यह मन्दिर और यह सरोवर गांव के ठाकुर के पूर्वजों के **धर्म-प्रेम** का स्मारक है।' यह कहते हुए उन्होंने **स्वामी जी** के स्थान में प्रवेश किया।

बहुत ही साफ-सुथरा आश्रम था। **कुँवर जी** ने आकर हम लोगों का स्वागत किया। उन्होंने कहा —आपकी प्रतीक्षा ही थी। और सब लोग आ गए हैं। चलिए। भीतर ही चलिए।

आँगन में रखे हुए तख्त पर बैठकर हम लोगों ने हाथ-पैर धोये और **पण्डित जी** के पीछे-पीछे आश्रम के भीतर गए। आश्रम पक्का बना हुआ था। भीतर एक कमरे में **स्वामी जी** पूजा कर रहे थे और छः आदमी वहाँ आसनों पर बैठे **जप** कर रहे थे। हम लोग भी भीतर जाकर **स्वामी जी** को नमन कर आसनों पर बैठकर अपना-अपना **जप** करने लगे। यथा-समय **पूजन की समाप्ति पर आरती** हुई और उपस्थित साधकों ने **पुष्पाञ्जलि** - द्वारा यन्त्रार्चन किया। इसके बाद **स्वामी जी** ने मेरी ओर मुँह करके कहा—'आपके दर्शन पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। **कुँवर जी** से आपका सम्वाद मुझे मिल चुका है। मेरा एक शिष्य कलकत्ते में रहता है। उसका नाम **शिवदान सिंह** है। वह आपकी बड़ी प्रशंसा किया करता है। **राखाल दादा** और **भैरवी माँ** का भी हाल मुझको बताया है। आप तो बहुत अच्छे साधक हैं।' यह कहकर उन्होंने वहाँ पहले से बैठे हुए साधकों का परिचय दिया।

मैंने कहा—मैं तो आप जैसे महात्माओं का चरण-सेवक हूँ। **शिवदान भाई** तो मेरे बड़े भाई के समान हैं। वे सचमुच ही जगदम्बा के बड़े भक्त हैं परन्तु उन्होंने आपकी चर्चा कभी नहीं की। कभी-कभी अपने गुरुदेव की अवश्य चर्चा किया करते थे और उनका नाम-धाम कभी नहीं बताया। आज आपके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ मानता हूँ। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि हमारे इस देहात में अभी तक **अच्छे-अच्छे शाक्त** मौजूद हैं।

स्वामी जी ने कहा—ऐसा कहकर आप भले ही सन्तोष कर लें। वास्तव में अब तो **लकीर पीटनेवाले शाक्त** भर हैं। यदि मन्त्र लेना भर ही **अच्छा शाक्त** होने का चिह्न है, तब तो आपका कहना ठीक हो सकता है। आज हममें ढूँढ़े-ही-ढूँढ़े शायद कोई मिले, जिसने अपने **'इष्ट-मन्त्र'** का एक बार भी **पुरश्चरण** किया हो। मेरे **पिता जी** तो **'दीक्षा'** देने के समय इस बात की प्रतिज्ञा करा लेते थे कि कम-से-कम एक **'पुरश्चरण'** तो करना ही पड़ेगा। यही नहीं, उससे बिना **'पुरश्चरण'** करवाए मानते नहीं थे। उसका परिणाम यह होता था कि उनके शिष्य सदैव कोई-न-कोई **'पुरश्चरण'** बराबर करते रहते थे। आपके मित्र **शिवदान सिंह** ने, जहाँ तक मैं समझता हूँ, अकेले **बटुक** के ही **दस पुरश्चरण** किए होंगे।

इसी बीच में **कुँवर जी** आ गए। आकर उन्होंने अपने पास का सामान **स्वामी जी** को दे दिया। उसको यथा-स्थान रखते हुए उन्होंने कहा—'बिना शक्ति की पूजा के पूजन निष्फल

होता है। हमारे यहाँ उसकी बड़ी असुविधा है, अतएव उस अभाव की पूर्ति के लिए शिष्यों ने यह प्रणाली चला दी है। **कुँवर जी** को उसके लिए उतनी दूर घर जाना पड़ा, जिससे पूजन में यह व्यवधान पड़ गया। इस दशा में कहीं **धर्म का अभ्युदय** हुआ है? परन्तु उपाय क्या है?' यह कहकर **स्वामी जी** ने पूजन आरम्भ किया। यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि उस मण्डली के सभी **साधक क्रियावान्** थे और **पूजन के सभी नियमों का समुचित रीति से पालन** कर रहे थे। सभी ने यथा विधि **'तत्त्व-शुद्धि'** और **'तर्पण'** तो किया ही, अपनी-अपनी बारी में अपने-अपने **इष्ट देवताओं की अच्छे स्वर में स्तुतियाँ** भी पढ़ीं। अन्य सभी साधकों ने तो **संस्कृत के स्तोत्र** ही पढ़े पर **मुँशी जी** ने अपनी बनाई दो **गजलें** सुनाईं, जो सचमुच बहुत सुन्दर थीं। अन्त में **स्वामी जी** और **दादा जी** ने **स-स्वर वैदिक 'शान्ति'-पाठ** किया। इस प्रकार उस दिन वह पूजन समाप्त हुआ और हम लोग यथा विधि एक दूसरे का अभिवादन करके वहाँ से विदा हुए। मार्ग में **मुँशी जी** ने कुछ बातचीत छेड़नी चाही, पर **दादा जी** के हुङ्कार करने से चुप हो गए और हम लोग लौटती बार चुपचाप ही घर आए! मैं तो जाकर अपनी बिछी हुई चारपाई पर पड़ रहा, पर मैंने देखा कि **दादा जी** हाथ-पैर धोकर अपने आसन पर जा विराजे हैं।

दूसरे दिन मैं कुछ विलम्ब से उठा। मैंने देखा, **दादा जी स्नान** और **पूजा** समाप्त करके कहीं जाने की तैयारी में हैं। खड़े होकर मैंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उन्होंने कहा—आज बरात की विदाई है। मैं **ठाकुर साहब** के यहाँ जा रहा हूँ। कल का तो सारा दिन आपके ही आदर-सत्कार में बीता है।

मैंने कहा—यह आपकी कृपा है। आप अवश्य जाएँ। मेरी चिन्ता न करें।

दादा जी चले गए और मैं अपने नित्य-कर्म में लगा। स्नान-पूजन से छुट्टी पाकर मैं बरात में पहुँचा। वहाँ चलने की तैयारी में सब लोग व्यस्त थे। यथा समय बरात विदा हो गई। यह पहली बरात मैंने देखी थी, जिसमें जरा भी झगड़ा नहीं हुआ था। चलते समय **दादा जी** के मैंने चरण-स्पर्श किए और हाथ जोड़कर पूछा—अब कब दर्शन होंगे?

उन्होंने बड़े ही मधुर ढङ्ग से उत्तर दिया—दूर कहाँ रहता हूँ। जब कलकत्ते से घर आना, सूचना दीजिएगा, मुझे अपने ही यहाँ पाओगे।

उनका वह आश्वासन मैं कभी नहीं भूल सका और **दादा जी का सत्सङ्ग** मुझे तब से बराबर प्राप्त होता रहा। वे वास्तव में एक **तपो-निष्ठ साधक** थे। तभी तो उनकी मृत्यु **'प्राणायाम'** करते-करते हुई थी। मैं अपने को धन्य मानता हूँ कि ऐसे **महान् साधक की कृपा** मैं प्राप्त कर सका।

'धर्म' का ज्ञान

धर्म की पुकार करने से **'धर्म का ज्ञान'** नहीं होता। **धर्म** तो जीवन का अङ्ग है। जीवन के व्यवहारों में उसे प्रतिलक्षित होना चाहिए, परन्तु हमारे जीवन की धारा में **विचारों का व्यभिचार** हो रहा है। अपनी **परम्परा** और **संस्कृति** के प्रति हममें उपेक्षा-भाव आ गया है, तब ऐसे में हमारी दुरवस्था नहीं होगी तो और फिर क्या होगा?'

साधक का संवाद

५. अर्थ का अनर्थ

बिलासपुर से लौटते समय मैंने निश्चय किया था कि **मैहर** में उतरकर **शारदाजी** के दर्शन अवश्य करूँगा। **शारदाजी की महिमा** मैंने लड़कपन में ही सुनी थी। **आल्हा** के गानेवाले अपने मङ्गलाचरण में **'देवी शारदा'** का पहले नाम लेते हैं। कहा जाता है कि **महोबे के राजा परिमाल** के **प्रमुख सेनापति आल्हा— भगवती शारदा के बड़े भक्त** थे और आज भी लोग समझते हैं कि वे **अमर** हैं और **शारदाजी की पूजा** नित्य बहुत तड़के सबसे पहले कर जाते हैं। यह भी लोगों का कहना है कि जब **शारदाजी की मढ़िया का द्वार** सबेरे आकर पुजारी खोलता है, तब उसे मूर्ति पर फूल-अक्षत चढ़े ही मिलते हैं। इस तरह की उनकी महिमा की अनेक बातें लोगों में प्रचलित हैं और चूँकि वे सब मैं बड़े भक्ति-भाव से सुनता रहा हूँ, अतएव **शारदाजी के दर्शनों की इच्छा** सदैव मन में जाग्रत् रही है, परन्तु कभी उधर जाने का अवसर ही न मिला और जब आज मैं गाड़ी पर सवार हुआ, तब बहुत प्रसन्न हुआ कि इस बार **भगवती शारदाजी के दर्शन** मिल जाएँगे।

मैहर-स्टेशन पर जब मैं उतरा, उस समय **सन्ध्या** हो रही थी। मेरी प्रसन्नता का कोई ठिकाना न था। स्टेशन पर से **शारदाजी की पहाड़ी** और उनके **मन्दिर की पताका** साफ दिखाई दे रही थी। लोगों से पूछने पर मालूम हुआ कि **पहाड़ी** शहर से काफी दूर है, सबेरे ही दर्शन करने के लिए जाना ठीक होगा। उनकी बात मानकर मैं स्टेशन के पास की धर्म-शाला में जाकर ठहर गया। धर्म-शाला में एक मुसलमान सज्जन को ठहरा हुआ देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। वहाँ के नौकर को इनाम देने का प्रलोभन देकर मैंने आराम के साथ रहने की व्यवस्था कर ली, परन्तु खाने-पीने की कोई व्यवस्था न कर सका।

दूसरे दिन तड़के ही मैंने **भगवती शारदाजी** के दर्शनार्थ जाने की तैयारी की। एक सज्जन और मेरे पास ही ठहरे हुए थे। वे भी मेरे साथ हो गए। परिचय पूछने पर मालूम हुआ कि वे **मिश्र** हैं और दर्शनार्थ यहाँ आए हैं। धर्म-शाला से हम लोग नगर के द्वार पर पहुँचे, परन्तु उस समय तक फाटक खुला नहीं था। कुछ देर तक प्रतीक्षा करने के बाद जब फाटक खुला, तब हम राज-मार्ग से **शारदाजी की पहाड़ी** की ओर चले। मार्ग में एक माली मिल गया, जो वहीं जा रहा था। हम लोग उसी के साथ हो गए। **मैहर** नगर से यों **शारदाजी की पहाड़ी** अति निकट जान पड़ती है, परन्तु है वह वहाँ से काफी दूर। रास्ते में एक पहाड़ी नाला मिला। माली ने सलाह दी कि यही स्नान आदि कर लेना ठीक होगा। फलतः हम दोनों ने उस नाले में स्नान किया। पानी तो स्वच्छ था पर उसकी स्थिति गन्दी थी। स्नान आदि से छुट्टी पाकर आगे बढ़े और कुछ ही देर में **पहाड़ी** के नीचे पहुँच गए। वहाँ एक बावली थी, जिसके अगल-बगल मिठाईवालों की कई दूकानें थीं। दर्शनार्थी यहीं

इनके पास अपना सामान रखकर और इनसे फूल-माला लेकर तथा बावली से जल भरकर **पहाड़ी** पर चढ़ते हैं। हम लोगों ने भी वही किया। **शारदाजी** की कड़ी चढ़ाई की कथाएँ सुनी थीं, परन्तु आज उसका अनुभव भी हो रहा था। मेरी हिम्मत तो छूट चुकी थी, परन्तु साथ के **मिश्रजी** के उत्साहित करने से ज्यों-त्यों करके चढ़ गया। ऊपर पहुँच कर जब नीचे चारों ओर देखा, एक **अद्भुत दृश्य** दिखाई दिया। उसके देखते ही सारी थकावट दूर हो गई। ऐसा ही सुन्दर वह था।

पहाड़ी की चोटी समतल थी और उसी पर **देवी का एक छोटा-सा मण्डप** था। **शारदाजी का दर्शन** किया और वहीं एक ओर बैठकर **चण्डी का पाठ** किया। तब तक वहाँ दर्शनार्थियों की भीड़-सी हो गई थी। **'पाठ'** समाप्त होने पर हम लोग नीचे उतर आए और दूकानदार के पास जाकर जल-पान करने की व्यवस्था करने लगे, परन्तु बावली का पानी पीने की मुझे हिम्मत न हुई, यद्यपि वहाँ सभी लोग उसी का उपयोग कर रहे थे। एक **पण्डितजी** मेरे साथ ही **पाठ** करके नीचे उतरे थे। वहीं के निवासी जान पड़ते थे। उनसे पूछा—क्या आप यहाँ कोई ऐसा स्थान बता सकते हैं, जहाँ अच्छा पानी पीने को मिल सके, साथ ही यह दोपहर भी आराम से कट जाए?

पण्डितजी ने हम लोगों का हालचाल जान चुकने के बाद कहा—अच्छा होगा, आप **स्वामीजी की कुटिया** पर चले जाएँ। वहाँ पानी भी मिल जाएगा, साथ ही **महात्मा का सत्सङ्ग** भी।

'वह **कुटिया** कहाँ है? यहाँ से कितनी दूर होगी?'

'इसी **पहाड़ी के दूसरी ओर पहाड़ के नीचे** ही है। अधिक दूर नहीं है। बहुत ही रमणीक स्थान है। मैं वहीं जा रहा हूँ। चलना चाहें, तो चलें।'

उनके इस प्रस्ताव से मुझे प्रसन्नता हुई और मैं तैयार हो गया। **मिश्रजी** ने कहा—मैं अकेला कहाँ जाऊँगा! मैं भी चलूँगा।

पण्डितजी ने कहा—जरा ठहर जाइए। **महात्माजी** के लिए दूध ले लूँ। मेरा लड़का घर से लेकर आता ही होगा।

मैंने कहा—अगर आप कहें, तो मैं भी कुछ लेता चलूँ।

'यह तो आपकी **श्रद्धा** की बात है पर यहाँ ऐसी कौन-सी चीज है, जो आप उनके लिए ले चलेंगे। यहाँ जो यह सब मिलता है, वह तो वे खाते नहीं।'

यह जानकर मैं चुप हो रहा। सचमुच वहाँ की दूकानों में ऐसी कोई चीज नहीं थी, जो मेरे ही खाने के लायक हो। तब किसी **महात्मा** के लिए वह कैसे उपयुक्त हो सकती थी? कुछ ही देर में **पण्डितजी** का लड़का दूध लेकर आ गया और हम तीनों आदमी वहाँ से चल पड़े। मार्ग में **पण्डितजी** ने **शारदाजी की महिमा** की अनेक बातें कहीं। यह भी कहा कि जब से **महात्माजी** ने यहाँ **बलिदान** बन्द करवा दिया है, तब से इस स्थान में पहले जैसा चमत्कार नहीं रह गया। फिर **महात्माजी** की जो प्रशंसा की तो उसका अन्त ही नहीं आया। यहाँ तक कि हम **महात्माजी के आश्रम** के समीप पहुँच गए। निस्सन्देह वह एक मनोरम स्थान था। हरी-भरी घाटी के एक कगार पर **महात्माजी की सुन्दर-सी कुटिया** के दिखाई देते ही मेरा हृदय आनन्द से नाच उठा। अब तक मैं श्रोता का रूप धारण

किए था। मैंने **पण्डितजी** से कहा—'स्थान तो सचमुच ही दिव्य है।' और यह कहने के साथ ही हम **कुटी** में पहुँच गए। देखा, **दण्डी स्वामी** की एक भव्य मूर्ति एक कुशासन पर विराजमान है। हम तीनों ने यथा विधि अभिवादन किया। **स्वामीजी** ने हम दोनों का परिचय पूछा। इसके बाद **पण्डितजी** से कहा—इन्हें कुएँ पर ले जाओ। ये वहाँ हाथ-पैर धोवें और जल-पान कर स्वस्थ हों।

पण्डितजी डोल-रस्सी लेकर हमें कुएँ पर पहुँचा आए। **कुटी** के पीछे वह कुँआ था। **मिश्रजी** ने झट पानी निकाला और हाथ-मुँह धोकर हम वहीं जल-पान करने को बैठ गए। मेरे झोले में कुछ पकवान था। उसे निकालकर **मिश्रजी** को दिया। **पण्डितजी** ने लेने से इनकार किया। फलतः हम दोनों ने खाकर पानी पिया और उस शीतल स्थान का आनन्द लेने लगे। कुछ देर तक वहीं विश्राम किया। उसके बाद डोल-रस्सी लेकर **कुटी** में गए। **स्वामीजी** अपने आसन पर ही विराजमान थे। उनसे कुछ हटकर एक आसन पर एक दूसरे **साधु** विराजमान थे, जो **जटा-जूटधारी** थे और रङ्ग-ढङ्ग से **नागा साधु** से जान पड़ते थे। हम दोनों ने उन्हें दूर से ही प्रणाम किया और **दण्डी स्वामी** के पास बैठकर बातचीत करने लगे।

मैंने कहा—महाराज, स्थान तो आपने बहुत सुन्दर चुना है, पर यहाँ **भिक्षा** आपको कहाँ मिलती होगी?

'उसकी मुझे उतनी चिन्ता नहीं रहती। **परमात्मा** सबकी चिन्ता करता है। फिर मैं तो अधिकतर दूध ही लेता हूँ। (**पण्डितजी** की ओर देखकर कहा) ये बड़े **भगवद्-भक्त** हैं। मेरे मतलब भर का दूध नित्य ही आकर दे जाते हैं।'

मैंने कहा—हाँ, **पण्डितजी** बताते थे कि आप एक-मात्र दूध ही की भिक्षा करते हैं और सो भी शुद्ध ब्राह्मण के ही यहाँ की गाय का।

'हाँ, मेरा कुछ ऐसा ही नियम है। यहाँ के **राजा** ने बहुतेरा आग्रह किया, पर मैंने उनकी भी भिक्षा नहीं ग्रहण की। **राजा** प्रायः यहाँ आते हैं। उनको **धर्म** से बड़ा अनुराग है।'

मैंने विनम्रता से कहा—परन्तु उन्होंने तो **शारदाजी** पर का **बलिदान** बन्द करवा दिया है। क्या उनका यह कार्य **धर्म का कार्य** माना जायगा?

'और नहीं तो क्या? आपको पता नहीं, धर्म के नाम पर **शारदाजी** के इस पवित्र स्थान में कितना अनाचार होता रहता था। एक-दो नहीं, सैकड़ों बकरों की यहाँ हत्या की जाती थी। **पञ्च-मकारी वामियों** का यह अड्डा बन गया था।'

लेकिन **वाम-मार्ग** तो सुनते हैं, एक **उत्कृष्ट धर्म** है। उसका प्रचार स्वयं **सदाशिव** ने किया है।'

'हाँ **तन्त्रों** में उसका उल्लेख है, परन्तु जिन **पञ्च-मकारों** का **वाम-मार्गियों** ने प्रचार कर रखा है, वे शास्त्रोक्त नहीं हैं।'

'सो कैसे महाराज?' मैंने अति विनम्रता से निवेदन किया।

स्वामीजी ने सुँघनी नाक से लगाते हुए कहा—अच्छा, मैं अभी बताता हूँ।

सुँघनी सूँघ और छींक-छाँककर तथा अँगोछे से नाक साफकर जब **स्वामीजी** स्वस्थ हुए, तब बोले —देखो, **तन्त्र** ने बताया है और साफ-साफ बताया है कि **पञ्च-मकार** क्या हैं? पहले **म-कार** को ये वामी—**मदिरा** कहते हैं, परन्तु **'तन्त्र'** कहता है—

जिह्वया गल - संयोगात्पिबेत्तदमृतं तदा।
योगिभिः पीयते तत्त न मद्यं गौड-पैष्टिकम्।।

अर्थात् जिह्वा को गले से मिलाकर उस

अमृत का पान करे। उसी का पान योगी लोग करते हैं, गुड़ या पिट्ठी से बने मद्य का नहीं। वामी लोग **दूसरे मकार** को **मांस** कहते हैं, परन्तु **कुलार्णव** में लिखा है—

पुण्यापुराण-पशुं हत्वा, ज्ञान-खड्गेन योग-वित्।
परे लयं नयेच्चितं, मांसाशी स निगद्यते।।

अर्थात् पुण्य और पाप-रूपी पशुओं को ज्ञान-रूपी खड्ग से मारकर, जो योगी मन को ब्रह्म में लीन कर देता है, वहीं मांसाहारी है। वामी लोग **तीसरे मकार** को **मछली** बताते हैं परन्तु **'आगम-सार'** में लिखा है—

गङ्गा - यमुनयोर्मध्ये, मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तु, स भवेन्मत्स्य-साधकः।।

अर्थात् **शरीरस्थ गङ्गा** और **यमुना—इडा** और **पिङ्गला**—के मध्य में दो मछलियाँ हैं। इन दो मछलियों का जो भक्षण करता है, वही मत्स्य-साधक है। यहाँ **गङ्गा** और **यमुना** से मतलब **इडा** और **पिङ्गला** नामक नाड़ियों से है। इनके योग से **प्राणायाम** करना ही मछली खाना कहा गया है। **चौथा म-कार** वामियों के यहाँ **अन्न के बने पदार्थ** हैं, परन्तु **'मेरु-तन्त्र'** कहता है—

आत्मनो जायते मोदस्ता मुद्राः परिकीर्तिताः।
ता ज्ञेया धारणा-ध्यान-समाख्यातास्तु मोक्षदाः।।

अर्थात् आत्मा से जो आनन्द उद्भूत होता है, उसी को मुद्रा कहते हैं। वही **ध्यान, धारणा** और **समाधि** के नामों से प्रसिद्ध है। **पाँचवाँ म-कार** वामियों के यहाँ **स्त्री-भोग** है, परन्तु **'विजय-तन्त्र'** में लिखा है—

कुल-कुण्डलिनी-शक्तिः, देहिनो देह-धारिणी।
तया शिवस्य संयोगे, मैथुनं परिकीर्तितम्।।

अर्थात् देह-धारी की देह में **कुण्डलिनी शक्ति** है। उसका **सहस्रार के शिव के साथ संयोग** करना ही मैथुन है। इन्हीं **पञ्च-मकारों** के सम्बन्ध में यह कहा गया है—

मद्यं मांसं च मीनं च, मुद्रा मैथुनमेव च।
मकार-पञ्चकं प्राहुर्योगिनां मुक्ति-दायकम्।।

और जो वामी लोग मदिरा, मांस, मछली आदि को **पञ्च-मकार** बताकर अपना उल्लू सीधा करते हैं, वह सब अनाचार है।

इस प्रकार अपना वक्तव्य समाप्त कर **स्वामीजी महाराज— 'हरिः ॐ हरिः ॐ'** कहने लगे और जब वे चुप हुए, तब मेरे पीछे से किसी ने बहुत धीरे से कहा—परन्तु महाराज, आपके इस प्रवचन से तो वामियों के **पञ्च-मकारों का ही महत्त्व** सिद्ध होता है।

मैंने घूमकर देखा। मेरे पीछे बैठे उस **साधु** ने ही यह बात कही थी, जिसे मैंने पहले कुछ दूर पर बैठा हुआ देखा था। मैं **स्वामीजी** की व्याख्या इतनी तन्मयता से बैठा हुआ सुन रहा था कि जान ही न सका कि वह **साधु** कब अपनी जगह से उठकर मेरे पीछे आकर बैठ गया था। उसे प्रश्न करते देखकर मैं कुछ खिसक गया, ताकि उसका **स्वामीजी** से आमने-सामने वार्तालाप हो। **साधु** की बात सुनकर **स्वामीजी** की मुख-मुद्रा में कुछ अन्तर-सा आ गया और उन्होंने उपेक्षा के ढङ्ग से पूछा—सो कैसे?

उस **साधु** ने कहा—**तन्त्र-शास्त्र** में अनेक **आचारों** का वर्णन है, परन्तु जितनी विशदता के साथ **वामाचार** का कथन किया गया है, उतना दूसरे **आचारों** का नहीं किया है। **आगम** के मतानुसार **पञ्च-मकारों का संग्रह** करना साधक के लिए अति आवश्यक है, अतएव **आगमीय योगाचारियों** के लिए **पञ्च-मकारों** का निर्देश उस रूप में किया गया है, जिसका वर्णन अभी आपने किया है। **महाराज,** आप **संन्यासी** हैं। आपको **धर्म के मामले में वाक्-छल**—नहीं, नहीं, क्षमा कीजिएगा —आपको **धर्म का अपलाप** नहीं

करना चाहिए।

उस **साधु** के कथन को सुनकर **स्वामीजी महाराज** तो आग-बबूला हो गए। उन्होंने डपटकर कहा —क्या कहा? **वाक्-छल! धर्म का अपलाप!** मैं **वाक्-छल** करता हूँ?

साधु ने उसी तरह विनम्रता से कहा—**स्वामीजी** क्रोध न करें। अपने उस कथन के लिए क्षमा माँग चुका हूँ, परन्तु तब मैं यह कहूँगा कि आपने **तन्त्रों का अध्ययन** नहीं किया है। आपको ऐसा एक भी **तन्त्र-ग्रन्थ** न मिलेगा, जिसमें **पञ्च-मकारों** की वास्तविक परिभाषा देकर उनके द्वारा **पूजन-विधान** का निरूपण न किया गया हो।

स्वामीजी शान्त नहीं हुए। वे पुनः तीखे स्वर में बोले— **तन्त्रों** में क्या वास्तविक परिभाषा है? जो व्याख्या मैंने बताई है, क्या वह **तन्त्रोक्त** नहीं है?

'है क्यों नहीं, पर वह एक **विशेष वर्ग** के लिए है। **तान्त्रिक साधना** में वास्तविक **पञ्च-मकारों** के उपयोग का ही विधान किया गया है। यही नहीं, **तन्त्रों** में मद्य के भेद बताए गए हैं, किन पशुओं का मांस ग्रहण करना चाहिए, कौन-कौन मछलियाँ विहित हैं, इन सबका ब्योरेवार उल्लेख किया गया है और साधना में इन सबका उपयोग कैसे करना चाहिए, यह सब **तन्त्रों** में विशद रूप से वर्णन किया गया है।

स्वामीजी चिल्लाकर बोले—यह सब किसी मद्यप पिशाच ने **तन्त्रों** में लिख दिया होगा। कहीं एक कोने में ऐसे वचन पड़े होंगे।

'नहीं, **महाराज,** ऐसा नहीं है। **तन्त्रों** के अधिकांश में इन्हीं सब बातों का वर्णन है। एक कोने में यहाँ-वहाँ तो आपकी दी हुई व्याख्या ही मिलेगी।'

अब तो **स्वामीजी** के दिमाग का पारा १०८ से भी ऊपर चढ़ गया, वे डाँटकर बोले—मूर्ख, क्या बक-बक करता है। चुप रह! तू **वामी** है। इसीलिए **शङ्कराचार्य** ने तुम गिरियों-पुरियों को त्याग दिया था। नहीं जानता है कि स्वयं **मैहर-नरेश** मेरी बात को नहीं काटते?

साधु ने भूमि पर सिर रखकर प्रणाम किया और तब उठकर खड़ा हो गया। उसने कहा—**स्वामीजी** मैं जानता हूँ, **मैहर-नरेश** आपकी बात नहीं काटते हैं, परन्तु **धर्म** का जो अपलाप आप करते हैं, उसे तो मैं नहीं सुन सकूँगा।

यह कहकर वह चला गया। **स्वामीजी** बैठे-बैठे गरजते-तड़पते रहे।

हम लोग इस विवाद से मन-ही-मन बहुत दुखी हो रहे थे। उस **साधु** के चले जाने पर मैंने हाथ जोड़कर कहा—मुझे हार्दिक दुःख है कि मेरे कारण यह अनावश्यक विवाद यहाँ छिड़ गया। इसके लिए मैं क्षमा माँगता हूँ।

स्वामीजी कुछ-कुछ शान्त हो रहे थे। उन्होंने कहा—इसमें आपका कोई अपराध नहीं है। व्यर्थ ही बीच में आकर वह कूद पड़ा। वह वामी है। इन वामियों ने **शारदा-पीठ** को अपने दुराचार का अड्डा बना डाला था, परन्तु मेरे यहाँ आ जमने पर इनका रङ्ग उखड़ गया।

मैंने दूसरा प्रसङ्ग उठाकर **स्वामीजी** को शान्त किया। जब वे पूर्ण रूप से शान्त हो गए, तब हम दोनों ने उनका अभिवादन किया और वहाँ से चल पड़े। साथ के **पण्डितजी** वहीं रह गए। जब हम दोनों **शारदाजी की पहाड़ी** के पास पहुँचे, तब सूर्यदेव अस्ताचल की ओर जा रहे थे। **भगवती को प्रणाम** कर हम लौट पड़े और सीधा स्टेशन पर आकर ही ठहरे परन्तु तब तक गाड़ी छूट गई थी।

साधक का संवाद

६. प्रकाशन

मैहर से आते समय मैं **प्रयाग-राज** में उतर गया था। सोचा बहुत दिन से **सङ्गम का स्नान** नहीं किया है, इस बार स्नान कर लिया जाए। फलतः गाड़ी से उतरकर मुसाफिरखाने में पड़ा रहा। वहाँ नींद कैसे लग सकती थी? सारी रात जागते ही बीती। सबेरा होने पर वहीं मुसाफिरखाने में हाथ-मुँह धोने आदि से छुट्टी पाकर एक एक्का किया और **बाँध** को चला।

प्रयाग कहने को तो **तीर्थ-राज** है; पर यहाँ उसके नाम के अनुरूप धर्म का वैसा जाग्रत-रूप, कम-से-कम, मुझे तो कभी नहीं दिखा। यदि प्रति वर्ष यहाँ **माघ में स्नान का मेला** न लगता होता, तो **तीर्थ-राज** होकर भी यह स्थान नगण्य ही रहता। **काशी, मथुरा, अयोध्या** और **हरिद्वार** इस प्रान्त के नगरों में धार्मिक रङ्ग-ढङ्ग में बहुत चढ़े-बढ़े हैं। वहाँ धर्म का जो जाग्रत रूप दिखाई देता है, उसका चिह्न तक **प्रयाग-राज** में नहीं है। इससे तो इस सम्बन्ध में **कानपुर** और **लखनऊ— तीर्थ-स्थान** न होकर भी धर्म के मामले में अपनी विशेषता रखते हैं। **कानपुर** तो **अयोध्या, मथुरा** की छटा दिखाया करता है, पर **लखनऊ** जो निर मुसलमानी नगर है, **धर्म-भावना** की एक ऐसी विशेषता रखता है, जो अपने ढङ्ग की अनुपम है। वहाँ के **चौक** में प्रति-मास जो **प्रदोष का अर्चन** इधर कुछ समय से चल पड़ा है, वह एक **अनूठा धार्मिक सङ्गठन** है, जिसका अनुकरण होना चाहिए। लखनऊ की इस प्रकार की बात का भी **प्रयाग** में अभाव है। ऐसी दशा में यह कैसे **तीर्थ-राज** हो सकता है? मैं इसी तरह की बातें मन में सोचता हुआ जा रहा था। मुझे ज्ञात तक न हुआ कि मैं कब **बाँध** पर पहुँच गया। यह तो जब एक्का खड़ा हुआ, तब मैंने जाना। एक्के से उतरकर एक्केवाले को पैसे दिए और **सङ्गम** की राह ली।

बाँध पर खड़े होकर जब मैंने इधर-उधर देखा, तब मेरी खिन्नता अपने-आप जाती रही। मेरी जहाँ तक निगाह जाती थी, एक **विराट् शून्य का दृश्य** था। उस पार **झूँसी के ध्वस्त किले** के ऊँचे-ऊँचे कगार थे, इधर **सङ्गम** की ओर उस पार **अरैल** था। इनके और बाँध के बीच में निर्जन-सा विस्तृत मैदान था, जिसके एक ओर **गङ्गा** और दूसरी ओर **यमुना** बहती हुई दिखाई दे रही थीं। यह एक ऐसा **अनूठा दृश्य** था, जैसा आज तक मैंने पहले कभी नहीं देखा था। **प्रयाग** कई बार आया हूँ, **सङ्गम** के तट पर बैठकर घण्टों **गङ्गा-यमुना** की क्षण-क्षण बदलनेवाली **सङ्गम-लीला की झाँकियाँ** लेकर स्वर्गीय सुख का अनुभव किया है, परन्तु आज **बाँध** पर से **सङ्गम** के जिस **विराट् रूप का दर्शन** किया, उससे मुझे अपनी ऊपर की सारी कल्पनाएँ निस्सार जँच गई और मेरे मुँह से सहसा निकल गया—क्यों न हो! **तीर्थ-राज** जो ठहरे। ऐसा **भुवन-मोहन स्वरूप** और किसका हो सकता है!

धीरे-धीरे **बाँध** से उतरकर **किले** के पास जाकर एक नाव की और इसके द्वारा **सङ्गम** पर

जाकर **स्नान** किया। **सङ्गम का स्नान** और सो भी **वैशाख** का महीना। क्या कहना है! **स्नान-ध्यान** कर जब मैं लौटकर **बाँध** पर आया, तब किसी ने पीछे से **'शर्माजी'** की आवाज लगाई। घूमकर देखा कि **गुरु दत्तात्रेय के मन्दिर** से **अवधूतजी** बुला रहे हैं—वही **अवधूतजी,** जिनके दर्शन **विन्ध्याचल** में हुए थे। निकट जाकर मैंने विनय के साथ उनको प्रणाम किया। बड़े स्नेह से पास बैठाकर उन्होंने कुशल पूछा। इसके बाद और भी बातें हुईं और सो भी इस ढङ्ग से मानो हम दोनों जन्म-जन्मान्तर के परम मित्र हों। उनके अपनेपन को देखकर मैं तो दङ्ग रह गया। **विन्ध्याचल** में कुल ५-६ घण्टे का साथ रहा होगा। और उस अवसर पर भी मुझसे उनकी उतनी अधिक बातचीत भी न हुई थी कि इस प्रकार हम दोनों परस्पर मिलते होते। **अवधूतजी** को जब यह ज्ञात हुआ कि मैं इस समय यों ही घूम-फिर रहा हूँ, तब उन्होंने बहुत ही मधुर भाव से कहा—तो चलो **शर्मा,** आज मेरा ही आतिथ्य स्वीकार हो। मैं तुमसे कुछ बातचीत करना चाहता हूँ। **विन्ध्याचल** में तो तुम ठहरे नहीं और जब तक रहे, ऐसा व्यस्त रहे कि तुमसे बातचीत करने का अवसर ही न मिल सका।

मैंने हाथ जोड़कर बहुत ही विनय के साथ कहा—यह तो मेरे सौभाग्य की बात है। आपका प्रसाद मिलेगा। मैं तो कृतार्थ हो गया।

अवधूत जी उठ खड़े हुए। नीचे आकर एक एक्का किया और **अवधूतजी** को बिठाकर हम भी बैठ गए। मार्ग में वैसी कोई बातचीत नहीं हुई। अन्त में जब एक्का यथा स्थान पहुँच गया, तब एक्केवान ने पूछा—**बाबूजी,** कहाँ जाना होगा?

अवधूतजी ने कहा—'ठीक है। यही उतरेंगे' और हम दोनों आदमी वहीं उतर पड़े। एक्केवाले को पैसे दे चुकने के बाद मैंने **अवधूतजी** का अनुसरण किया। दो-एक गलियों को पार करने के बाद **अवधूतजी** एक मकान के दरवाजे पर जाकर खड़े हो गए। उन्होंने कहा—**शर्माजी,** यही **भट्टजी** का घर है। इस नगर में यही इस समय **प्रमुख साधक** हैं। इनके पूर्वज तो और भी **ऊँचे दर्जे के साधक** थे।

इतने में एक **वृद्ध सज्जन** घर के भीतर से आते दिखे। बाहर आते ही उन्होंने **अवधूतजी** को बड़ी आवभगत के साथ लिया और झट कमरा खोलकर उन्हें ससम्मान भीतर लिवा ले गए। कुशल-प्रश्न के बाद **भट्टजी** ने पूछा—आप कब पधारे?

'चार दिन से यहाँ हूँ। **रामप्रसाद** के यहाँ ठहर गया।' यह कहकर उन्होंने **भट्टजी** को मेरा परिचय दिया। इसके बाद कहा—आज **रामप्रसाद** के यहाँ पूजन होगा। तुम्हें बुलाने आया हूँ। अभी सीधा **सङ्गम** से आ रहा हूँ। मैं उनको वचन दे आया हूँ कि **भट्टजी** को साथ लेकर यथा समय आ जाऊँगा।

'परन्तु आप तो जानते हैं कि मैं—'

'मैं सब जानता हूँ। आपको मेरा कहना मानना पड़ेगा।'

'आपकी आज्ञा सिर पर है, परन्तु एक बात है।'

'वह कौन-सी बात है?'

'वह यह कि आजकल लोग **विधि-विधान** की परवा नहीं करते और कितने तो कुछ जानते भी नहीं हैं। ऐसे लोगों के साथ **अर्चन** करना मैं तो अनुचित समझता हूँ।'

अवधूतजी ने हँसते हुए कहा—परन्तु यह

अवस्था आप लोगों की ही कृपा का फल है। यदि आप लोग अपनी-अपनी मण्डली के लोगों को ठीक-ठीक बताए रहते, तो यह दशा ही न आती।

भट्टजी ने कहा—कोई जानना चाहे, तब बताया जाए या यों ही गली-गली बताता फिरे। कुछ करने-धरने की किसी में **श्रद्धा** ही नहीं। लोग **कान फुँकवा लेना** ही अब अलं समझते हैं। न कोई **पुरश्चरण** करता है, न नियम से **पूजा-पाठ** ही करता है।

अवधूतजी बोले—किसी अंश तक आपके कथन को मान सकता हूँ, परन्तु यह कहकर आप लोग अपने दोष से बच नहीं सकते। आप तब कान ही ऐसों के क्यों फूँकते हैं? आज ऐसे **गुरु** कहाँ हैं, जो अपने शिष्यों को निरालस होकर **सविधि दीक्षा** देते हों और उन्हें उनकी स्थिति के अनुसार **पूजा-पाठ** बताते हों?

मैंने कहा—**महाराज,** यह हाल तो सभी जगह है। इसमें दोष किसी का नहीं है, समय ही ऐसा है।

अवधूतजी ने कहा—हाँ, **शर्माजी,** एक प्रकार से तुम्हारा कहना ठीक है और इसी से मैं किसी से भी दुराव नहीं करता। **अभिषिक्त** है, **दीक्षित** है या केवल **उपदिष्ट** है, मैं इसकी खोद-विनोद नहीं करता। **जगदम्बा** का जो भी **नाम-स्मरण** करता है, उसको देखकर ही मैं पुलकित हो जाता हूँ, परन्तु **भट्टजी** वह सब पसन्द नहीं करते। यदि **अभिषिक्त** न होगा, तो ये उससे बात तक नहीं करेंगे।

भट्टजी बोले—हाँ **महाराज,** मेरा तो यही नियम है। **गुरु का आदेश** ही ऐसा है।

'**गुरु का आदेश**' सर्वदा मान्य है, परन्तु क्या **गुरुदेव** ने यह भी आदेश दिया है कि यदि यह मार्ग विनष्ट होने लगे, तो भी चूँ न करना। **गुरुदेव** के समय में आज का हाल कहाँ था और जाने दो, **बड़े भट्टजी** के समय में उनके पास कितने साधक आते थे और अब कितने आते हैं? इन्हीं कुछ दिनों में कितना परिवर्तन हो गया?'

'तो इसमें मेरा क्या दोष है? मैं तो देखता हूँ कि जब से **अँगरेजी का प्रचार** हुआ है, कोई **धर्म की बात** नहीं करता।'

'मैं तो आपसे सहमत नहीं हूँ। बहुत से **अँगरेजी पढ़े-लिखे लोग** और अच्छे पढ़े-लिखे लोग मार्ग में हैं और बड़ी निष्ठा के साथ **अर्चन** आदि करते हैं। यह अँगरेजी पढ़ने का दोष नहीं है। दोष वस्तुतः है हमारी **गोपनीयता** का। हम इसे इतना **गोपनीय** रख रहे हैं कि इस बात का डर है कि कहीं **धर्म का ही गोपन** न हो जाए। इससे यह हमारा कर्तव्य है कि जिन घरानों में इसका प्रचार रहा है, उन पर से इसका प्रभाव न हटने दें और जो **धर्मवान् व्यक्ति** मिलें, उनसे इस **मार्ग की चर्चा** करें और इसका **रहस्य** उन्हें बतावें।

'सो यह सब मेरे मान की बात नहीं। लोग मुझे जान जाएँगे और मेरी बड़ी बदनामी होगी। मैं बड़े झगड़े में पड़ जाऊँगा।'

'तो यह क्यों साफ-साफ नहीं कहते? अंग्रेजी को क्यों दोष देते हो? परन्तु **भट्टजी, शक्ति के साधकों** को यह कायरता शोभा-जनक नहीं है। एक **वीर** के लिए यह कहना कि लोग उसकी निन्दा करेंगे, अतएव वह **धर्म की बात** नहीं करेगा, कितना लज्जा-जनक है?'

'आप चाहे जो कहें, कायर ही सही, पर जो काम मैंने आज तक नहीं किया, उसे अब क्या करूँगा? मेरा तो पार हो आया है।'

'यह भी ठीक नहीं कह रहे हो। अभी बीसों वर्ष मुझसे छोटे हो।'

मैं चुपचाप दोनों महानुभावों का वार्तालाप सुन रहा था। **अवधूत महाराज** जो बात कह रहे थे, उसकी ओर **भट्टजी** ध्यान नहीं दे रहे थे। वे दे भी नहीं सकते थे, अतएव अधीर होकर मैंने **अवधूतजी** से कहा—तो **महाराज,** आप क्या चाहते हैं?

'मैं? मैं चाहता हूँ कि **शाक्त शाक्त बनें**—कायर न बनें। **सदाशिव** ने **भ्रातृ-भाव** और **मातृ-पूजा** का जो उपदेश किया है, उसे केवल **चक्र** के भीतर ही व्यावहारिक रूप न दिया जाए किन्तु वह **शाक्तों के जीवन का अङ्ग** बने। मैं चाहता हूँ कि देश में दूसरे सम्प्रदाय जिस तरह फल-फूल रहे हैं, वैसे ही हमारा **शाक्त-धर्म** भी फले-फूले।' यह कहकर **अवधूतजी** चुप हो गए।

मैंने विनम्रता से कहा—**महाराज,** तब तो आप गलत आदमी चुन रहे हैं। **भट्टजी** पुरानी परिपाटी के आदमी ठहरे। यह इनके मान का नहीं है। इसके लिए तो नई पीढ़ीवालों को घेरिए, **सभा** बनाइए, **प्रेस** खोलिए, **पत्र** निकालिए, **प्रचारक** तैयार करिए।

अवधूतजी बीच में ही बोल पड़े—हाँ **शर्मा,** ठीक कहते हो। यह **प्रचार का युग** है। घर बैठकर जिज्ञासुओं की प्रतीक्षा करने से काम नहीं बनेगा। अगर हमें जीवित रहना है, तो सभी कुछ करना पड़ेगा। जरा देखो तो, जिस **शाक्त-धर्म** के एक-एक तत्त्व को ग्रहण कर देश में अनेक सम्प्रदाय उन्नति कर रहे हैं, वही **शाक्त-धर्म** आज हम साधक कहे जानेवालों की कोठरियों में बन्दी पड़ा हुआ अपनी अन्तिम साँसें गिन रहा है। कितना हृदय विदारक दृश्य है!'

'अन्तिम साँसें गिन रहा है? **महाराज,** यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही है और यह भी मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि **शाक्तों** के तत्त्वों को दूसरे सम्प्रदायवालों ने ग्रहण किया है!'

'तुम कैसे समझोगे? तुम तो बङ्गालियों के बीच में रहते हो, जहाँ **माँ की घर-घर पूजा** होती है और जहाँ **भ्रातृ-भाव** सामाजिक जीवन का अङ्ग बन गया है। अब रही दूसरी बात, सो **शाक्तों** के **पाँच तत्त्व—गुरु-मन्त्र** आदि किस सम्प्रदाय में नहीं है? आज भारत का कौन ऐसा धार्मिक समाज है, जिस पर **शाक्त-धर्म** के तत्त्वों का प्रभाव नहीं पड़ा है।'

'अच्छा! आपका इन **तत्त्वों** से मतलब है। मैंने कुछ दूसरा ही आशय लिया था।'

'तुमने उन **तत्त्वों** को समझा था। उन **तत्त्वों** के ग्रहण करने का अधिकार सब किसी को नहीं है। उसके लिए बड़ा सौभाग्य चाहिए। इसी से तो मुझे दुःख होता है कि जिनके हाथ में वह परम पुनीत थाती है, उसे वे दाबे बैठे हैं। यह इसी का परिणाम है कि आज के साधक **तर्पण-चर्वण** करना भी नहीं जानते, **देवता की पूजा** करना तो अलग रहा।'

'यह तो **अधिकारी** होने पर है। जो जहाँ तक **अधिकारी** है, वह वहाँ तक पा जाता है।'

'परन्तु यदि हमारे प्रयास से उनके **अधिकार की वृद्धि** हो जाए, तो वैसा प्रयास करना क्या अनुचित है? यदि सभी साधक यह जान जाएँ कि उनकी **पूजा का यह रहस्य है कि साधक अपने मानव-भाव को देव-भाव में परिणत करे, यहाँ तक कि आहार, निद्रा, भय आदि शारीरिक एवं मानसिक विकारों में भी वह अपने को देव बनावे,** यदि इसका अनुभव शाक्तों को आरम्भ में करा दिया जाए, तो इसमें किसी की क्या हित-हानि होगी?'

'हाँ **महाराज,** यह तो अच्छी ही बात होगी। इस दृष्टि-कोण से मैंने आपका कथन नहीं लिया था। क्षमा कीजिएगा।'

'आप क्या, मेरे मतलब की ओर कोई भी ध्यान नहीं देता है। मैं केवल इतना ही चाहता हूँ कि **शाक्त लोग वास्तव में शाक्त बनें। शाक्त-मार्ग—मानव की पशुता छुड़ाकर, उसे देवता बनाने का प्रयत्न करता है।** वह जो कुछ करता है, **धर्म-भावना** से करता है। **भोजन** करता है, तो वह **यज्ञ** करता है। वह **स्त्री** को **भोग का साधन** नहीं बनाता है, किन्तु उसको भी **देवी का रूप** प्रदान कर अपने से ऊँचे पद पर ही अधिष्ठित करता है। **पशुता** को त्यागे रहने का **शाक्त-धर्म** में जो आग्रह है, उसका बोध आज कितने साधकों को है?'

'हाँ **महाराज,** आपका कथन सर्वथा यथार्थ है। इस प्रकार की **शिक्षा** का तो आज सर्वथा अभाव है। ऐसा प्रयत्न तो अवश्य होना चाहिए।'

'मैं तो जहाँ जाता हूँ, लोगों को बराबर खटखटा देता हूँ, परन्तु इन **गोपनीयता-वादियों** के आगे मेरी एक भी नहीं चल पाती है। इन लोगों की **साधना** तो **पर्व-पूजा** तक ही सीमित है। साल में एक-दो बार आठ-दस साधकों को बुलाकर **चक्र-पूजा** क्या कर ली, बड़ा भारी मोर्चा सर कर लिया। यह नहीं देखते कि उनकी ये भिन्न-भिन्न **मण्डलियाँ** आज जिस दयनीय दशा को प्राप्त हैं, उसका मूल कारण यही है कि इनका अन्य **मण्डलियों** से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। इसी नगर में कई **मण्डलियाँ** हैं और मजा यह कि एक **मण्डलीवाला** दूसरी **मण्डलीवाले साधक** से परिचित तक नहीं। यह कितनी बड़ी विडम्बना है! जिस धर्म का मूल सिद्धान्त ही यह है कि शाक्त को **'आत्मीय'** माने, उस धर्म के अनुयायी यहाँ तक हो जाएँ कि एक दूसरे को जानते तक न हों! मैं तो यह अवस्था नहीं रहने दूँगा। मेरे लिए असह्य है यह अवस्था! **भट्टजी,** आज **रामप्रसाद** के यहाँ पूजन में आपको चलना पड़ेगा। यह आपसे मैं फिर कहता हूँ।'

भट्टजी ने कहा—**महाराज,** मैंने तो पहले भी इनकार नहीं किया था। आप जो आदेश करेंगे, वह शिरोधार्य ही होगा।

इतने में एक सज्जन वहाँ आकर खड़े हो गए। वे इस ढङ्ग से आए जैसे कोई अपने घर आता है। मैंने समझा, **भट्टजी** के कोई होंगे परन्तु **अवधूतजी** ने पूछा—तुम कैसे आए?

आगन्तुक ने कहा—**महाराज,** मैं तो आपको बुलाने आया हूँ। **चाचाजी** खुद आते, परन्तु वे प्रबन्ध करने में लगे हैं। आपके आज्ञानुसार मैं सबसे कह आया हूँ।

अवधूत जी ने कहा—मैं **सन्ध्या-वन्दन** आदि करके **भट्टजी** को साथ लेकर ठीक समय पर आऊँगा। तुम चलो।

आगन्तुक के चले जाने पर हम लोग भी उठे। **सन्ध्या** भी हो रही थी। **सन्ध्या-वन्दन** आदि से छुट्टी पाने पर **अवधूतजी भट्टजी** को तथा मुझको साथ लेकर **रामप्रसादजी** के यहाँ चले। मार्ग में उन्होंने मुझसे कहा—**शर्माजी,** यह **मुंशी** बड़ा भक्त है, **पूजा** भी सविधि करता है। इसके यहाँ की व्यवस्था देखकर आपको खुशी होगी।

मैंने कहा—यह सब आपकी कृपा है।

अवधूतजी ने कहा—नहीं भाई। तुम तो **बङ्गाल के शाक्तों** के बीच के हो। मैं जानता हूँ, **बङ्गाली लोग— माँ की पूजा** बड़ी श्रद्धा से करते हैं, साथ ही **क्रम** का भी पूरा ध्यान रखते हैं। यह बात यहाँ कहाँ? पर **मुंशी रामप्रसाद** जैसे

कुछ भक्तों के यहाँ इस देश में भी माँ की बहुत अच्छे ढङ्ग से **पूजा** होती है।

इस प्रकार बातचीत करते हुए हम लोग **मुंशीजी** के घर पहुँच गए। दरवाजे पर ही **मुंशीजी** ने **अवधूतजी** का स्वागत किया और हम सबको भीतर लिवा ले गए। आँगन में पहुँचकर उन्होंने **अवधूतजी** के पैर धोए और दालान में ले जाकर एक सुन्दर आसन पर बिठाया। हम लोग भी पैर धोकर **स्वामीजी** के पास के आसनों पर बैठ गए। इसके बाद **पूजा** आरम्भ हो गई। **पूजा** के बीच में जो दूसरे लोग आए, वे सब वहाँ आकर क्रम से आसनों पर बैठते गए। **पूजा** के समाप्त होते-होते वह दालान भर गई। **आरती** होने के बाद **पुष्पाञ्जलि का दृश्य** तो और भी अनूठा दिखा। वहाँ एकत्र स्त्री-पुरुषों ने एक साथ मिलकर जितने अच्छे ढङ्ग से **पुष्पाञ्जलि** पढ़ी, उसे श्रवण कर मेरा तो रोम-रोम पुलकित हो उठा और उसके बाद **प्रसाद-ग्रहण** के समय की **वन्दनाएँ** तथा **शान्ति-पाठ** आदि जो भी हुए सब हिन्दी में और ऐसे कि मेरे आनन्द का ठिकाना ही न रहा। **विसर्जन** के बाद मैंने कहा—ऐसा **आनन्द** तो मुझे पहले कभी नहीं मिला। यहाँ तो निराले ठाठ-बाट हैं।

अवधूतजी ने कहा—यह सब **भक्त-प्रवर रामप्रसाद** की महिमा है।

रामप्रसादजी ने हाथ जोड़कर कहा—यह आप क्या कहते हैं! यह सब आपका प्रताप है। आपने ही तो हम लोगों के उद्धार के लिए यह मार्ग बताया है।

'तुम समझे नहीं **शर्माजी** की बात। उनका मतलब **वन्दनाओं** से है, जो **हिन्दी** में की गई है। क्यों **शर्मा जी?**'

'हाँ **महाराज,** यह तो बिलकुल ही नई बात है। यही नहीं, यह इतनी उपयोगी है कि इसका **व्यापक प्रचार** होना चाहिए। इससे लोगों का **विशेष रूप से लाभ** होगा। वे समझेंगे तो कि वे क्या करते हैं।'

'मैं तो सोच रहा हूँ कि **कवच, स्तोत्र, सहस्र-नाम** आदि सभी **लोक-भाषा** में हो जाएँ। ऐसा होने से उनका बड़ा कल्याण होगा, जो **संस्कृत** नहीं जानते।'

इस प्रकार बातचीत करते हुए हम लोग बाहर आए। जब सब लोग अपने-अपने घर चले गए, तब **अवधूतजी** ने **मुंशीजी** से कहा—कल सबेरे की गाड़ी से मुझे **विन्ध्याचल** जाना है। एक काम है।

यह कहकर मुझे लिए हुए वे अपने ठहरने के स्थान को चले। मैंने भी वहीं विश्राम किया। सबेरे **अवधूतजी** ने मुझे जगाया। उन्होंने कहा—**शर्माजी,** चलो न **विन्ध्याचल। जगदम्बा के दर्शन** कर आओ।

मैंने कहा—आज्ञा शिरोधार्य है।

ठीक समय पर हम **विन्ध्याचल**-स्टेशन पर जा उतरे। वहाँ **अवधूतजी** की अभ्यर्थना के लिए पहले से ही चार-पाँच आदमी उपस्थित थे। वेष-भूषा से वे किसी रईस के सरदार से जान पड़ते थे। **अवधूतजी** के प्लेटफार्म पर पैर रखते ही उन लोगों ने आकर उनके चरण-स्पर्श किए और बड़ी नम्रता से कुशल-प्रश्न किया। **अवधूतजी** ने अपने सहज मधुर भाव से समुचित उत्तर देते हुए पूछा —**याग** ठीक तरह हो रहा है न? **स्वामीजी** को कहाँ ठहराया है?

उन **सरदारों** में से एक ने कहा—आपके आशीर्वाद से सारा कार्य यथा-विधि ही हुआ है। आज **पूर्णाहुति** होगी। **सरकार** आपकी बड़ी प्रतीक्षा कर रहे हैं। **स्वामीजी** भी **काशी-नरेश के**

बाग में ही ठहरे हैं। वहीं **सरकार** भी हैं और वहीं **यज्ञ-शाला** भी है। आपके लिए मोटर बाहर खड़ी है।

अवधूतजी ने कहा—बहुत ठीक। पर अभी **गङ्गा-स्नान** मैं करूँगा। उसके बाद **माँ के दरबार** में जाऊँगा। तुम लोग चलो। घण्टे-डेढ़ घण्टे में आ जाऊँगा। **सरकार** से कह देना।

उसी **सरदार** ने बहुत ही विनय के साथ फिर कहा—परन्तु **सरकार** ने कहा था कि **महाराज** को सवारी में यहीं लिवा लाना।

अवधूतजी ने हँसकर कहा—परन्तु **राजा के दर्शन** बिना स्नान किए कैसे कर सकता हूँ। कह देना नाराज नहीं होंगे।

यह कहकर **अवधूतजी** आगे बढ़े। स्टेशन से बाहर आकर हँसकर वे अपनी राह लगे। मैं पीछे-पीछे था। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि मार्ग में **अवधूतजी** नें इस **याग** और इन **राजा** की चर्चा क्यों नहीं की। मुझे चुप देखकर **अवधूतजी** ने कहा—**शर्मा जी,** मैंने जानबूझकर ही तुमसे न **प्रयाग** में, न **मार्ग** में ही यह बताया कि मैं **विन्ध्याचल** क्यों चल रहा हूँ। मुझे इस **याग का निमन्त्रण** यथा समय मिला था, पर मैं नहीं जानता था कि **स्वामीजी** भी यहाँ आएँगे। वास्तव में मैं तुम्हें इन्हीं के दर्शन कराने के लिए यहाँ लाया हूँ। ये मेरे **गुरु-भाई** हैं। इनसे और **राजा साहब** से भी मिलकर तुम प्रसन्न होगे।

मैंने कहा—यह आपकी मुझ पर कृपा ही है, जो ऐसे **साधकों का दर्शन** प्राप्त होगा। कभी-कभी तो मैं यह सोचने लगता हूँ कि सब झंझट छोड़-छाड़कर आप जैसे **महात्माओं** के साथ रहकर इधर-उधर भ्रमण किया करूँ।

'परन्तु **शर्माजी,** यह तुम्हारे जीवन की सबसे बड़ी भूल होगी। वह झंझट तो छूटेगा नहीं, एक दूसरा झंझट और ऊपर से लद जाएगा। इससे जहाँ हो, वहीं बने रहना ठीक है।'

इस तरह बातें करते हम **गङ्गा जी** के तट पर पहुँचे। **अवधूतजी** का सारे मार्ग में कितने ही लोगों ने बड़े आदर के भाव से अभिवादन किया। **गङ्गाजी** पर भी वही हाल रहा। **स्नान-पूजा** कर **मन्दिर** में पहुँचे। वहाँ उनके आगमन की सूचना पहले ही पहुँच चुकी थी। **पण्डितों, पुजारियों** आदि ने उन्हें **माँ के दर्शन कराए**। मैं पहले से ही जानता था कि **अवधूतजी** का **विन्ध्याचल** में कितना आदर है, अतएव उनके **स्वागत - सत्कार** को देखकर मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ।

माँ के दर्शन पर तथा भक्तों से मिल-जुलकर **अवधूतजी** मन्दिर से नीचे उतरे। वही **सरदार** लोग एक ओर आते हुए दिखाई दिए। समीप आकर विन्रमता से कहा—**सरकार** ने फिर सेवा में भेजा है। **पूर्णाहुति** का समय आ गया है।

अवधूतजी ने मुस्कराकर कहा— मैं तो वहीं चल रहा हूँ। आओ।

थोड़ी ही देर में हम लोग **काशी-नरेश के बाग** में पहुँच गए। फाटक के भीतर घुसते ही **यज्ञ-शाला** सामने ही दिखाई दी। **हवन** हो रहा था। हम भी वहीं गए और जहाँ **स्वामीजी** बैठे थे, जाकर बैठ गए। **अवधूतजी** ने **स्वामीजी** को मेरा परिचय दिया। उन्होंने एक बार मेरी ओर देखा, पर कुछ कहा नहीं।

यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि **स्वामीजी** वेश-भूषा से **स्वामी** नहीं थे अर्थात् उनकी वेश-भूषा हम गृहस्थों जैसी ही थी, परन्तु रूप-रेखा से अवश्य **स्वामी** जान पड़ते थे। उम्र में **अवधूतजी** से बड़े थे, तो भी वे इनकी

अपेक्षा अधिक स्वस्थ तथा तेजस्वी जान पड़ते थे। उनका मुख प्रसन्नता से दमक रहा था और उनकी दृष्टि में मधुरता झलकती थी। मैं तो उन्हीं को देखता रह गया।

हवन हो रहा था। **पण्डित लोग** जिस तन्मयता से अपने कार्य में संलग्न थे, उससे वहाँ का वातावरण अलग स्वर्गीय दृश्य दिखा रहा था। **पूर्णाहुति** का समय आ गया था। **राजा साहब** भी आ गए। उन्होंने **अवधूतजी** के चरण-स्पर्श किए और कहा—मुझे पूरा विश्वास था कि आप अवश्य कृपा करेंगे।

बातचीत के सिलसिले में **अवधूतजी** ने **राजा साहब** को मेरा परिचय दिया। **राजा साहब** ने मुझसे भी प्रीति-पूर्वक बातचीत की। **हवन** की समाप्ति के बाद **राजा साहब** ने **अवधूतजी** से कहा— अब क्या आज्ञा है?

'अब तो सब कार्य **जगदम्बा की कृपा** से निर्विघ्न समाप्त हो गया। आप विश्राम करें। मैं **निशा-पूजा** की व्यवस्था करने जा रहा हूँ।'

इस पर **राजा साहब** अपने स्थान को चले गए और हम लोग **स्वामीजी** के साथ उनके निवास-स्थान पर आए। **स्वामीजी** ने **अवधूतजी** से कहा—कुछ खाओ-पियो। बड़ा अति-काल हो गया है।

'आप तो जानते है, मैं एक ही बार भोजन करता हूँ।'

'परन्तु फल-फूल खाना-पीना तो भोजन नहीं है। फिर **शर्माजी** तो तुम्हारी तरह **अवधूत** नहीं हैं। उस आलमारी में देखो। तुम दोनों के लिये खाने का सामान रक्खा होगा।'

अवधूतजी के संकेत पर मैंने आलमारी खोली। उसमें फलों और मिष्ठान्नों का ढेर लगा था। कुछ फल निकालकर मैंने **स्वामीजी** को तथा **अवधूतजी** को दिए और कुछ अपने लिए ले लिए।

फल खाकर हम लोग बैठे ही थे कि एक **दरबान** ने आकर **अवधूतजी** से कहा—**महाराज,** फाटक पर एक **ब्राह्मण** आए हैं। आपके दर्शन करना चाहते हैं। अपना नाम **पण्डित गङ्गानारायण शास्त्री** बतलाया है।

अवधूत जी ने कहा—आने दो।

स्वामीजी ने पूछा—ये **शास्त्री** कौन है?

अवधूतजी ने कहा—मैं तो नहीं जानता। यहाँ तो इस नाम का कोई **पण्डित** नहीं है। बाहर के ही होंगे।

इतने में **दरबान** के साथ **शास्त्रीजी** आते दिखाई दिए। **शास्त्रीजी** की वेश-भूषा नई चाल की थी। पगड़ी की जगह पर गोल टोपी थी। सुनहली कमानी का चश्मा लगाए हुए थे। हाथ में एक बेत था। कलाई में घड़ी बँधी हुई थी और पैरों में नए कट की स्लीपरें। आते ही उन्होंने **अवधूतजी** को दूर से ही नमस्कार किया और वहाँ पर बिछी हुई चटाई पर बैठ गए। उन्होंने हम लोगों की ओर देखा भी नहीं।

अवधूतजी ने उनके अभिवादन का कोई उत्तर नहीं दिया था, इससे **शास्त्रीजी** का चेहरा कुछ तमतमा-सा उठा और झुँझलाकर उन्होंने संस्कृत में कहा—क्या आपके दरवार में विद्वानों का ऐसा ही आदर होता है?

अवधूतजी ने हिन्दी में ही उत्तर दिया—आपसे यह बात किसने कही थी? **शास्त्रीजी,** आप धोखा खा गए हैं।

शास्त्रीजी बोले—आप ठीक कहते हैं। यह तो प्रकट ही है। पर मैं आपसे एक विषय पर बातचीत करना चाहता हूँ। आपके आदेश पर इस **पावन-पीठ** में जो हत्या-काण्ड हुआ है,

उसका समर्थन आप कैसे करते हैं?

अवधूतजी हँसकर बोले—ऐसी बातचीत करनी है, तो किसी **शास्त्री** के पास जाइए। रही हत्या-काण्ड की बात, सो आपका कथन सर्वथा निराधार है।

'मैंने सुना है कि यहाँ जो **शत-चण्डी** हुई है, आपके आदेश से हुई है। इस सिलसिले में १० बकरे मारे जा चुके हैं और आज भी एक मारा जाएगा। क्या यह सब असत्य है?'

'अच्छा, अब मैं समझा। **शत-चण्डी** और उसमें किए गए **बलिदानों** के लिए मैं जिम्मेदार हूँ। परन्तु मैं विनम्रता से आपसे यह जानना चाहता हूँ कि आप यह सब मुझसे इस प्रकार क्यों पूछ रहे हैं?'

'मैं यह सब **अधर्म** समझता हूँ। मैंने इस बात की प्रतिज्ञा की है कि ऐसे हत्या-कर्मों को जैसे हो सकेगा, रोकूँगा। मैं इधर दस दिन के लिए बाहर चला गया था। जब लौटकर आया तब सुना कि **अवधूतजी** के आदेश से यहाँ दस बकरे मार डाले गए और ग्यारहवें के मारे जाने की तैयारी हो रही है। मैं यह सब नहीं होने दूँगा, इसे आप समझ लें।'

अवधूतजी ने अपनी स्वाभाविक मुस्कराहट के साथ कहा—आप तो **विद्वान्** हैं। आपको तो किसी के **धर्म-कार्य** में इस प्रकार विघ्न नहीं डालना चाहिए।

'आप इसे **धर्म-कार्य** कहते हैं?'

'मैं ही नहीं, हमारा **शास्त्र** भी ऐसा कहता है। यह **शाक्त-धर्म** का **एक प्रमुख धर्म-स्थान** है। दूसरे धर्मवालों को यहाँ **शाक्तों के धर्म-कार्य में विघ्न** डालने का कोई अधिकार नहीं है। यदि मेरे इस निवेदन से आपका समाधान नहीं है, तो इस प्रसङ्ग की आगे चर्चा करना बेकार है।'

शास्त्री जी उठ खड़े हुए। उन्होंने कठोर स्वर में कहा—मैं पहले से ही जानता था कि आप ऐसा कहेंगे, परन्तु दलील निर्बल है। यह स्थान सारी हिन्दू-जाति का है—एक-मात्र **शाक्तों** का ही नहीं है और हिन्दुओं का बहुमत नहीं चाहता कि उनके धर्म-स्थानों में धर्म के नाम पर पशुओं का वध किया जाए।

और इस तरह बकते-झकते वे चले गए। उनके चले जाने पर **स्वामीजी** ने कहा—ये **शास्त्रीजी** तो बड़े विलक्षण जान पड़ते हैं!

अवधूतजी ने कहा—विलक्षण क्या हैं, कोरे पेटू पण्डित हैं! क्या आपको पता नहीं है कि बहुत से हमारे ऐसे शास्त्री इसी बात का वेतन पाते हैं कि वे जगह-जगह **पीठ-स्थानों** में जाकर जैसे बने, वैसे **बलि-प्रथा** को रोकें? ये भी उन्हीं में से एक हैं।

यह सुनकर **स्वामीजी** चुप हो रहे और मुझे तो ऐसे शास्त्रियों का भेद पहले से ही ज्ञात था।

थोड़ी देर के विश्राम के बाद **अवधूतजी** ने **स्वामीजी** से कहा—'अब **निशा-पूजा** का प्रबन्ध करना है। **जगदानन्द** ने उसकी व्यवस्था का भार अपने ऊपर लिया था। जाकर देखता हूँ कि उसने क्या किया है।' यह कहकर वे उठ खड़े हुए।

मैंने पूछा—क्या मैं भी चलूँ?

'नहीं, नहीं, आप बैठकर **स्वामीजी** से बात-चीत करें। विशेष कर इसी के लिए तो मैं आपको यहाँ लाया हूँ।'

अवधूतजी के चले जाने पर **स्वामीजी** ने कहा—**अवधूतजी** आपकी बड़ी प्रशंसा करते थे। वे आपका बहुत स्नेह करते हैं। उनसे यह जानकर कि आपको धर्म से बड़ा अनुराग है, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

मैंने कहा—**स्वामीजी,** यह आप महात्माओं की विशेष दया है, जो अपने भक्तों का इस प्रकार उत्साह बढ़ाते रहते हैं। **धर्मानुराग** जो कुछ है, वह **गुरुदेव का प्रसाद** समझना चाहिए।

'आप बहुत ठीक कहते हैं। **गुरु की कृपा से ही तत्त्व का ज्ञान** होता है। इस मार्ग में इस बात की जरूरत है कि अपनी **साधना का क्रम** भङ्ग न होने दे। **गुरु-प्रदत्त मन्त्र की शक्ति का विकास** रुकने न पावे।'

मैंने पूछा—सो कैसे **स्वामीजी?**

'गुरु-प्रदत्त मन्त्र की शक्ति की धारा का आदि स्रोत सदाशिव की आत्म-शक्ति है। वहीं से वह अटूट बहती चली आ रही है। गुरु से प्राप्त होने पर जप का अभ्यास न होने से, उस शक्ति से उस शक्ति की धारा का विकास रुक जाता है। अतएव **मन्त्र का जप** बराबर करने से वह **चैतन्य** रहेगा और उसकी **शक्ति का विकास** भी होगा।'

'और **पूजा-पाठ?**'

'वे तो उसके **प्रधान अङ्ग** ही हैं। वे भी किए जा सकें, तो फिर क्या कहना! परन्तु वह सब प्रति-दिन जीवन भर करते जाना सभी गृहस्थों के मान की बात नहीं है। इसी से मैं **मन्त्र के जप पर अधिक जोर** देता हूँ।'

'**पूजा-पाठ** क्या, मैं तो **जप** भी वैसा नहीं कर पाता।'

'परन्तु **शर्माजी,** यह तो ठीक नहीं है। कम-से-कम आप जैसे साधक को **पूजा-पाठ** भी नित्य करना चाहिए और **जप** तो प्रत्येक दशा में अनिवार्य है।'

'परन्तु **स्वामीजी, पाठ** तो किया भी जा सकता है, पर **पूजा** का नित्य करना कठिन है। वह अटपटी भी है। उसका **प्रातः-कृत्य** करना तो सचमुच मुझ जैसे के बल-बूते की बात नहीं है।'

'ऐसा तो नहीं है। **शास्त्र** में उसकी भी व्यवस्था कर दी गई है और कोई भी अपने **देवता का पूजा-पाठ** अपनी सुविधा के अनुसार कर सकता है। यही नहीं, उस उतनी **पूजा** से ही उसका पूरा कल्याण हो जाता है। केवल **भाव** चाहिए।'

'परन्तु **स्वामीजी,** वह **भाव** होना ही तो कठिन है। इसके सिवा उस **भाव** की कोई सीमा भी तो नहीं है।'

'एक दृष्टि से आपका कथन ठीक है। भक्त लोगों का इस सम्बन्ध में दूसरा ही दृष्टि-कोण है। उसमें कठिन शब्द के लिए स्थान नहीं है। तो भी आपके ही दृष्टि-कोण से इस पर विचार करता हूँ। **भाव का अभाव** किसी को नहीं होता। हाँ, न्यूनाधिक वह अवश्य रहता है, परन्तु आप पूर्णता को ही अपना लक्ष्य क्यों बनाते हैं? वह तो अन्तिम लक्ष्य है। प्रारम्भ से लेंगे तो न वह कठिन प्रतीत होगा, न असीम ही। **देवता की पूजा सारी-की-सारी भाव-मय है।'**

'सो कैसे **स्वामीजी?**'

'उदाहरण के लिए एक **भूत-शुद्धि** को ही लीजिए। यह क्या है? **भाव-योग** की एक रोचक क्रिया मात्र है। इसकी विधि में जो **भाव** है, वह अपने ढङ्ग का अनूठा है। साधक इसकी क्रिया को करके **इस भावना का अनुभव करता है कि उसने अपनी पूजा के लिए अपने शरीर का ऐसा संस्कार किया है कि वह एकदम दिव्य हो गया है और पूजा करने के लिए पूर्ण रूप से उपयुक्त हो गया है।** इसी प्रकार वह अपने पूजा-क्रम में सभी वस्तुओं को **मान्त्रिक संस्कारों से दिव्य रूप** प्रदान करके अन्त में उस सामग्री से **देवता की पूजा**

करना आरम्भ करता है और इस सारी प्रक्रिया में उत्तरोत्तर उसका **भाव** बढ़ता जाता है, यहाँ तक कि वह अपने को और अपने आस-पास के वायु-मण्डल को सर्वथा **देव-भाव** में ग्रहण करता है। वस्तुतः यह हमारी **पूजा** एक विशेष प्रकार का **योग** है, जिसे हम सुविधा के लिए **भाव-योग** कह सकते हैं।'

'परन्तु **स्वामीजी,** ऐसी **भावना की अनुभूति** तो सरल वस्तु नहीं है।'

स्वामीजी ने तुरन्त हँसकर उत्तर दिया—**भगवद्-प्राप्ति** का इससे भी सरल कोई उपाय है, सो मैं नहीं जानता। हम **योगियों** और **वेदान्तियों** की बात नहीं उठाऐंगे। **योग-साधना** कितनी दुस्साध्य है, यह सर्व-विदित है। **वेदान्तियों** की साधना को तो स्वयं **भगवान् कृष्ण** ने ही कहा है कि वह अति कठिन है। हम **भक्ति-साधना** को ही लेते हैं, जिसकी आज बड़ी महिमा है, परन्तु उस मार्ग के अनुयायियों में आज ऐसे कितने हैं, जो पूर्णता प्राप्त कर चुके हैं। उसकी **साधना-प्रणाली** के आदि-अन्त का आज तक ज्ञान नहीं हो सका है। उसका जो साहित्य उपलब्ध है, उससे तो यही ज्ञात होता है कि उसकी साधना की कोई सीमा नहीं है। बस, जीवन-भर **भक्ति** किए जाओ, पूर्णता को प्राप्त होने पर **भगवान्** अपने-आप आकर दर्शन देंगे परन्तु ऐसी बात **तान्त्रिक साधना** में नहीं है। इसकी तो मर्यादा बँधी हुई है। यह स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट कर दिया गया है कि इतने दिन तक इस **विधि से साधना** करने पर **उद्देश्य की सिद्धि** अवश्य होगी। इससे अधिक **सरल उपाय** और क्या हो सकता है?'

'आपका मतलब **पुरश्चरण** से है, परन्तु कितने ही लोगों को मैं जानता हूँ, जिन्होंने **यथा-विधि पुरश्चरण** किया है और उनका सारा प्रयत्न बेकार गया है।' मैंने कुछ दबते-दबते कहा।

'नहीं, नहीं, **शर्माजी,** सङ्कोच छोड़कर अपनी बात कहिए। आप ठीक कहते हैं। कितने ही **पुरश्चरण** सिद्ध नहीं होते और यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, परन्तु यह प्रसङ्ग के बाहर की बात है। इस समय तो मैं यही कह रहा हूँ कि **तान्त्रिक साधना** दूसरी साधनाओं की अपेक्षा सरल है और ससीम भी है। रही उसके **सिद्ध** होने की बात, सो यह तो **साधक की क्षमता** पर निर्भर करती है।'

स्वामीजी की बात पूरी भी न हो पाई थी कि **राजा साहब** आते हुए दिखाई दिए। **स्वामीजी राजा साहब** को आते देखकर चुप हो रहे। मैंने उठकर **राजा साहब** को आसन दिया। **राजा साहब** ने बैठते ही पूछा— **अवधूत जी** नहीं दिखाई दे रहे हैं?

स्वामीजी ने कहा—आपके ही काम से गए हैं।

राजा साहब ने कहा—**अवधूत जी** मुझ पर बड़ी कृपा करते हैं। ऐसे निःस्पृह परोपकारी साधु कहाँ हैं! यह उन्हीं की प्रेरणा है कि यह कार्य इस प्रकार पूर्ण रीति से हो सका है। यही क्या? उन्हीं की कृपा से मैं आपको पा सका हूँ और जब आपने दया दिखाई ही है, तो इतनी और कृपा हो कि मेरा घर भी पवित्र हो जाए।

स्वामीजी ने कहा—मैंने तो श्रीमान् से पहले ही कह दिया है कि मैं साथ ही चलूँगा और पन्द्रह दिन तक वहाँ रहूँगा।

'मेरी एक और प्रार्थना है, मेरी ही नहीं, **रानी साहब** की भी है कि आज का **अर्चन** भी आप ही करें। मैं जानता हूँ कि इधर दस दिन

से आपको विश्राम करने का अवसर तक नहीं मिला है, परन्तु हम सबकी इच्छा है कि आपके ही हाथ से आज **प्रसाद** भी मिले।'

'इसमें मुझे कुछ भी कष्ट न होगा। **पूजा** करना तो हम लोगों का **नित्य का अभ्यास** है। मुझे तो **अहर्निश पूजा** में संलग्न रहने में ही सुख मिलता है।'

राजा साहब ने बड़ी प्रसन्नता से कहा—मैं जानता था कि आप मेरा अनुरोध मानेंगे।

यह कहकर वे मुझसे बातचीत करने लगे। कहाँ किससे **दीक्षा** ली, **बङ्गाल** और **आसाम** में **शाक्त-धर्म** की क्या दशा है, वहाँ कैसे-कैसे **साधक** हैं? **पूजा-अर्चन** वहाँ कैसे होता है आदि आदि अनेक प्रश्न पूछे, जिनका मैंने व्योरेवार उत्तर दिया। मेरी बातचीत से **राजा साहब** बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने इस बात का भी आग्रह किया कि जब आपने आकर इस प्रकार कृपा दिखाई है, तब यह परिचय स्थायी होना चाहिए।

मैंने कहा— मैं इसे अपना सौभाग्य मानता हूँ और जब-जब श्रीमान् का आदेश होगा या मुझे अवकाश मिलेगा, श्रीमान् के दरबार में पहुँच कर दर्शनों का लाभ प्राप्त करूँगा।

हम लोग बातचीत कर ही रहे थे कि **अवधूतजी** भी आ गए। **राजा साहब** ने उठकर उनका स्वागत किया। जब वे आसन पर बैठ गये, तब **राजा साहब** ने कहा—आप तो जब से पधारे हैं, बराबर दौड़ ही रहे हैं।

अवधूतजी ने हँसकर कहा—श्रीमान्, यह तो **धर्म** ही ठहरा।

हम सभी हँस पड़े। दूसरे विषयों की बातें थोड़ी देर तक होती रहीं। इसके बाद **राजा साहब** चले गए। उनके पीछे ही **दरबान** के साथ **लाला दुनीचन्द** आ उपस्थित हुए। उन्होंने हम सबको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और चटाई पर बैठते हुए कहा—**शर्माजी,** इस बार तो खूब ही दौड़ाया। **मैहर** के **स्टेशन मास्टर** से पता मिला कि **प्रयाग** गए हो। वहाँ दूकान के **मुनीम** से पता लगा कि **अवधूतजी** के साथ **विन्ध्याचल** गए हैं। दौड़ा आया। सौभाग्य की बात मिल गए। रात में गाड़ी मिलेगी। चलिए **कलकत्ता।** नहीं तो बड़े चक्कर में पड़ जाओगे। हमें हर हालत में कल **कलकत्ता** पहुँच जाना चाहिए।

उन्होंने ब्योरा दिया। मैं चुप था। **अवधूतजी** ने कहा— **शर्मा,** तो तुम यात्रा की तैयारी करो। गाड़ी तुम्हें यहाँ नहीं **मिर्जापुर** में मिलेगी।

मैं जाना नहीं चाहता था, पर लाचार था। यदि न जाता, तो भारी घाटा उठाना पड़ता। मैंने खेद के साथ कहा— **स्वामी जी** के और आपके इस **सत्सङ्ग** से वञ्चित होना पड़ रहा है। मैं तो न जाता, पर मामला बिना मेरे गए सुधरेगा नहीं।

स्वामीजी बोले— अभी तो यह पहली भेट-मुलाकात है। इसी को अन्तिम क्यों बनाए दे रहे हैं।!

अवधूत जी जोर से हँस पड़े और मैं झेंप गया। **दोनों महात्माओं** को प्रणाम करके चलने लगा, तब **अवधूतजी** से कहा— **राजा साहब** से क्षमा माँगता हूँ। चलते समय भेंट नहीं कर सका।

यह कहकर मैं **मुनीमजी** के साथ हो गया। बाग के बाहर आकर एक्का किया और **मिर्जापुर** की राह ली।

साधक का संवाद

७. प्रचार

(१)

बहुत दिनों से इच्छा थी कि **आश्विन का नवरात्र** कम-से-कम एक बार **विन्ध्याचल** में किया जाए, परन्तु **कलकत्ते की दुर्गा-पूजा** के कारण ऐसा अवसर कभी न मिल सका। इधर कुछ दिनों से जब सारा कारबार लड़कों ने सँभाल लिया, तब मैं निश्चिन्त-सा हो गया और मुझे केवल ऊपरी निगरानी करनी पड़ती थी। अतएव मैं इस बार ठीक समय पर **विन्ध्याचल** आ गया। **पण्डा जी** ने मुझे रहने के लिए एक ऐसे घर में स्थान दे दिया, जिसमें काफी एकान्त था। उस मकान में **दस-बारह पण्डित** ठहरे हुए थे, जो भगवती के स्थान में एक राजा की ओर से **शत-चण्डी** करते थे। उन पण्डितों का **सत्सङ्ग** प्राप्त हो जाने से मुझे काफी आनन्द मिला। **गङ्गा-स्नान** कर मन्दिर में जाता, **पाठ** आदि करने के बाद घर आ जाता। भोजन आदि से निवृत्त होकर उन **पण्डितों के साथ वार्त्तालाप** होता या इधर-उधर टहलने चला जाता।

पण्डितों की भीड़-भाड़ तो **प्रतिपदा** से ही काफी हो गई थी, परन्तु यात्रियों की भीड़ **पञ्चमी** से अधिक हो गई! **छठ** के दिन मन्दिर में एक **'हैण्ड-बिल'** बँटा, जो मुझे भी मिला। उस **'हैण्ड-बिल'** में देवी के मन्दिर में **पशु-बलि** करने का कड़ा निषेध था। यह भी खबर मिली कि स्टेशन के पास पण्डाल बनाकर एक सभा का आयोजन किया गया है, जिसमें दूर-दूर से आए हुए पण्डितों के भाषण होंगे और **पशु-बलि** का इस प्रकार प्रबल विरोध किया जायगा। **विन्ध्याचल** के उस शान्त वातावरण में अपने ढङ्ग का कदाचित् यह पहला ही आन्दोलन था। मन्दिर में उपस्थित पण्डितों और पण्डों में इसकी काफी चर्चा थी। अधिक लोग **पशु-बलि** के विरोधी ही दिखाई दिए। उधर जहाँ **पशु-बलि** होती थी, वहाँ भी कुछ लोग खड़े थे, जो लोगों को **पशु-बलि** करने से रोकते थे। विरोध करनेवालों का प्रभाव भी पड़ता हुआ दिखाई दिया। अनेक लोग **बलि** करने से विरत होते दिखाई दिए। मन्दिर में ही यह भी सुना कि जहाँ **बलि** के लिए पशुओं की बिक्री होती थी, वहाँ भी पशु खरीदने का वे निषेध कर रहे हैं।

इस प्रकार मन्दिर में काफी चहल-पहल मची हुई थी। मैं मुश्किल से अपना पाठ-पूजन कर सका। घर आने पर भोजन किया और अपने साथी पण्डितों की मण्डली के साथ सभा-स्थान पर जा पहुँचा। भाषणों का ताँता लगा हुआ था। जिस समय हम लोग पहुँचे, एक पण्डित जी भाषण कर रहे थे। वे बहुत ही कड़े स्वर में **पशु-बलि** का निषेध कर रहे थे। सन्ध्या तक हम लोगों ने कई विद्वानों के भाषण सुने। उनमें से दो-एक ने सचमुच अपने प्रतिपाद्य विषय का तर्क-पूर्ण ढङ्ग से प्रतिपादन किया।

सन्ध्या-समय जब हम लोग लौटे, तब मार्ग में लोगों को यह कहते सुना कि इन सब पण्डितों का आयोजन मुम्बई के एक सेठ ने किया है। उसने उन लोगों को पुष्कल रुपए

देकर यहाँ बुलाया है। यह सभा उसी सेठ ने लगवाई है। सेठ देश के सभी देवी-मन्दिरों से **बलिदान** उठवा देने के लिए अपना पैसा पानी की तरह बहा रहा है। अधिक लोग इस तरह की बातें कहकर सेठ की प्रशंसा ही करते थे। वहाँ के पण्डों का एक दल भी सेठ के पक्ष में था, परन्तु **बलिदान** के पक्ष में जो लोग थे, उन्होंने इस आन्दोलन का कोई विरोध नहीं किया और चुप ही रहे। ऐसे क्षुब्ध वातावरण में **नवरात्र** के शेष दिन किसी तरह व्यतीत हुए।

जिन पण्डितों के साथ मैं ठहरा था, उनमें एक को छोड़कर सभी **बलि** के विरोधी थे। उनकी भी बातें मैंने सुनीं। उनमें जो सज्जन **बलि-प्रथा** के पक्ष में थे, वे अपने साथ के पण्डितों का विवाद में सामना तो नहीं कर सके, परन्तु वे उनकी उक्तियों के कायल नहीं हुए। मैं इस सम्बन्ध में बराबर निरपेक्ष रहा। **नवमी की पूजा** समाप्त करने के बाद मैं उन्हीं पण्डितों के साथ **'त्रिकोण-यात्रा'** करने गया। मार्ग में उनसे तरह-तरह की बातें हुईं। उन्होंने बताया कि आज **अष्ट-भुजा** के पहाड़ पर एक महात्मा आए हैं। वे अपनी सभा कर रहे हैं। जल्दी चलिए, उनकी सभा देखी जाए।

वे उस सभा में शामिल होने को बहुत उत्सुक जान पड़े। अतः उनके कारण मुझे भी जल्दी करनी पड़ी। **'काली-खोह'** में पहुँचकर वहाँ के कुएँ पर हाथ-पैर धोए और तब **जगदम्बा का दर्शन** किया। फिर जल-पान किया और बाहर आकर पहाड़ की राह ली। **गेरुआ तालाब** पर जब पहुँचे, तो वहाँ कुएँ पर कुछ लोग बैठे पानी पी रहे थे। मेरे साथ के पण्डित जी ने उनमें से एक सज्जन से पूछा—सुना है, यहाँ **अष्ट-भुजा** के पहाड़ पर कोई सभा हो रही है?

उक्त सज्जन ने मुँह टेढ़ा करके कहा—सभा क्या हो रही है, एक महुए के पेड़ के नीचे एक साधु ठहरा है! उसके पास कुछ लोग बैठे हैं। वहाँ **शाक्त** ही जाने पाते हैं। सुना है, वह साधु **मांस** खाने और **शराब** पीने का उपदेश करता है! पूरा कलि का अवतार है!

पण्डित जी ने पूछा—वह महुए का पेड़ किधर है?

उन्होंने कहा—इसी रास्ते से आगे जाने पर आपको मिल जाएगा।

हम आगे बढ़े। कुछ दूर चलने पर हमें दूर ही से एक पेड़ के नीचे कुछ भीड़-भाड़ दिखाई पड़ी। **पण्डित जी** ने कहा—जान पड़ता है, **महात्मा जी** की यही सभा है।

मैंने पूछा—क्या सभा में चलोगे?

उन्होंने कहा—जरूर! देखना चाहिए कि **महात्मा जी** क्या कहते हैं।

अब हम उस स्थान के बिलकुल समीप आ गए थे। वह पेड़ मार्ग से कुछ हटकर दूर पर स्थित था। जब हम लोग उस ओर को मुड़े और पेड़ के नजदीक पहुँचे, तब एक सज्जन ने आकर कहा —महाशय, यदि आप **शाक्त** हैं, तो आगे बढ़िए, नहीं तो लौट जाइए।

पण्डित जी ने कहा—हम **शाक्त** ही हैं।

यह कहकर हम उन सज्जन के साथ हो लिए और पेड़ के नीचे जाकर एक ओर बैठ गए। हमने देखा कि एक गेरुआ वस्त्र पहने एक **दण्डी स्वामी** एक पत्थर पर बैठे भाषण कर रहे हैं। उनकी रूप-रेखा भव्य और भाषण-शैली मन-मोहक थी। हमारे पहुँचते-पहुँचते तक उनका भाषण समाप्त हो चुका था, अतएव हमें उसका अन्तिम अंश ही सुनने को मिला।

अपना भाषण समाप्त करते हुए उन्होंने

कहा कि "इस **कलि-काल** में जो व्यक्ति **माँ काली** का सहारा नहीं लेगा और उनकी पूजा-अर्चा **तान्त्रिक** रीति से नहीं करेगा, उसकी सद्-गति नहीं होगी। दुःख की बात है कि हमारा **हिन्दू-धर्म** दैन्यावस्था को प्राप्त हो गया है। स्वेच्छाचार ने **वेदाचार** का लोप कर दिया है। इस पवित्र **विन्ध्य-क्षेत्र** में **माँ** का जो पूजन सदियों से जारी है और जिसका विरोध आज तक कोई नहीं कर सका, उसी का खुल्लम-खुल्ला विरोध हो रहा है, परन्तु अब हम यह नहीं सहन कर सकेंगे। **शाक्त** अपने धर्म पर इस प्रकार का आघात नहीं होने देंगे। **'विन्ध्य-गिरि' शाक्तों** का **'पीठ'**-स्थान है। जो **शाक्त** नहीं हैं, उन्हें क्या अधिकार है कि वे हमारे घर पर आकर हमारे धर्म की निन्दा करें? आप **शाक्तों** को चाहिए कि इन विरोधियों को मुँह-तोड़ उत्तर दें। मैंने उस **पशु-बलि**-विरोधी सभा में जाकर उसके आयोजकों को ललकारा था, परन्तु वहाँ बोलने ही नहीं दिया। तब लाचार होकर हमें अपनी सभा बनानी पड़ी है। **शाक्त** लोगों को चाहिए कि अपना दृढ़ता से सङ्गठन करें।" इस प्रकार स्वामीजी ने अपने भाषण की समाप्ति की और सभा विसर्जित हुई।

थोड़े से लोग वहाँ बैठे रह गए। कदाचित् वे **स्वामी जी** की सभा के सदस्य हों। संख्या में कोई ग्यारह-बारह व्यक्ति थे। अब हम दोनों व्यक्ति भी **स्वामी जी** के समीप जाकर बैठ गए और **स्वामी जी** से बातचीत होने लगी। मेरे साथ के **पण्डित जी** ने पूछा—आप जनता में **शाक्त-धर्म** का प्रचार कैसे करेंगे?

स्वामी जी—उसका महत्त्व बतलाकर!

'सो कैसे?'

'यही कि यह **ईश्वरीय धर्म** है। इसका अनुसरण करने से लोगों का इह-लोक और पर-लोक बनेगा।'

'परन्तु लोग तो इसकी यह कहकर निन्दा करते हैं कि **शाक्त** लोग **सुरापी** हैं और **मांसादि** का भक्षण करते हैं। तो क्या आप **मांस-भक्षण** और **सुरा-पान** का भी प्रचार करेंगे?'

'कदापि नहीं! **शाक्त-धर्म मद्य-पान का निषेध** करता है, **मांस-भक्षण का निषेध** करता है।'

'परन्तु लोगों की तो विपरीत धारणा है।'

'लोगों की धारणा का क्या कहना! सभी धर्म अनाचार का विरोध करते हैं। **भारत** ही एक ऐसा देश है, जहाँ सबसे पहले अनाचारों का विरोध हुआ है। **ब्रह्मा, शुक्र** और **कृष्ण** ने अपने समय में **मद्य-पान का निषेध** किया था, परन्तु हम हिन्दुओं की आज क्या प्रवृत्ति है? अपने देश में **मद्य-पान** और **मांस-भक्षण** आदि का कितना व्यापक प्रचार है और यही लोग **शाक्त-धर्म** पर लाञ्छन लगाते हैं! **शाक्त-धर्म आर्य-संस्कृति** की रक्षा किए हुए है। जिस बात का **वेदों में विधान** किया हुआ है, उसी का **शाक्त** आग्रह करना अपना धर्म समझते हैं।'

मैंने पूछा—महाराज, इस बात को अधिक स्पष्ट बताने की चेष्टा करें, तो बड़ी कृपा हो।

स्वामी जी ने कहा—**वैदिक संस्कृति** मध्य-मार्ग पर स्थित है। वह **अनाचारों का निषेध** करती है और **संयम का आदेश!** उसने **धर्म** को मानव प्रकृति पर बोझ के रूप में नहीं रखा है। मानव प्रकृति को **धर्म**-रूप में चलने का मार्ग निर्दिष्ट किया है। वर्तमान युग के लिए **शङ्कर** ने **आगम** का जो उपदेश किया है, वह उसी का संक्षिप्त संस्करण है।

पण्डित जी ने कुछ कुढ़कर कुछ तेज स्वर में कहा—यदि आप अपने उपदेश में इस प्रकार

की भाषा का प्रयोग करेंगे, तो **शाक्त-धर्म** का जनता में क्या प्रचार होगा, यह एक प्रश्न है!

स्वामी जी ने मन्द मुस्कान के साथ कहा—पण्डित जी, घबड़ाइए नहीं, **शाक्त-धर्म** का इसी भाषा में प्रचार होगा। आप जो बात चाहते हैं, वह हम लोग नहीं कर सकते। **शाक्त धर्म—ईश्वरीय धर्म** है। उसका अपना विधि-विधान है, जिसका उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता।

पण्डित जी फिर उसी स्वर में बोले—कम-से-कम आप **वीराचार** के सम्बन्ध में कुछ भी खुलकर नहीं कह सकेंगे।

स्वामी जी ने अट्टहास के साथ कहा—**शाक्त-धर्म वीराचार** नहीं तो और क्या है? हम तो **वीराचार** ही का प्रचार करते हैं।

पण्डित जी ने आश्चर्य के साथ पूछा—और **दक्षिण-मार्ग**?

स्वामी जी बोले—**दक्षिण-मार्ग** तो **पशु-धर्म** है और देश में उसका व्यापक प्रचार है। हम लोग तो देश-वासियों को **पशु-धर्म** से मुक्त करना चाहते हैं और यह कार्य **वीराचार** के द्वारा ही सम्पन्न होगा।

पण्डित जी ने क्रुद्ध-सा होकर कहा—तो यह कहिए कि आप **'पञ्च-मकार'** का प्रचार करना चाहते हैं।

इस बार **स्वामी जी** जोर से हँस पड़े। अपनी हँसी को रोककर उन्होंने कहा—जो बात आप जानते नहीं, उसके सम्बन्ध में आपको तर्क-वितर्क नहीं करना चाहिए। **शाक्त-धर्म** के अन्दर **'पञ्च-मकार'** को स्थान दिया गया है क्योंकि उसका आग्रह करने से **पशु-भावना का निरोध** होता है, परन्तु वह उसमें उतना महत्त्व का स्थान नहीं रखता, जितना कि **आत्म-साधना** अर्थात् **माँ का आराधन!** यही वह तत्त्व है, जिसकी उपलब्धि से **मानव की पशुता** दूर होती है और वह **आत्म-साक्षात्** की ओर अग्रसर होता है। उस तत्त्व की उपलब्धि में **'पञ्च-मकार'** सहायता भर देते हैं। इसके सिवाय उनका और कोई महत्त्व नहीं है।

पण्डित जी ने अपने पहले के ही स्वर में फिर कहा—किसी **दण्ड-धारी संन्यासी** को मैंने **पञ्च-मकारों** का ऐसा समर्थन करते नहीं पाया!

स्वामी जी ने मन्द स्वर में हँसते हुए कहा—कम-से-कम एक से तो आज भेट हो ही गई है। बात यह है कि आज देश में **धर्म-ग्लानि** सर्वत्र व्याप्त है। वैदिक आचार का सर्वथा लोप हो गया है। कहीं-कहीं कुछ ही लोग उसके जानकार मिलेंगे।

पण्डित जी ने पूछा—ढिठाई के लिए क्षमा माँगता हूँ। **वैदिक** और **तान्त्रिक** दोनों भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं और दोनों ही आज भी मौजूद हैं। उनमें से एक का आदर होता है, दूसरे का निरादर?

स्वामी जी ने मधुर स्वर में कहा—मैं पहले ही कह चुका हूँ कि जो जिस बात को जानता हो, उसी को उसमें दखल देना चाहिए। मैं फिर कहता हूँ कि आपको **वैदिक** और **तान्त्रिक संस्कृति** का पता नहीं है—नहीं तो आप इस तरह की बातचीत न करते। इतनी ही देर में मैंने समझ लिया कि आप विवाद करना चाहते हैं, तथ्य नहीं जानना चाहते और मैं विवाद करने को तैयार नहीं क्योंकि मेरा एक उद्देश्य है। उसी उद्देश्य को लेकर मैंने यहाँ **अष्ट-भुजा** के पहाड़ पर आसन लगाया है। शाक्तों का समुचित ढङ्ग से सङ्गठन करके मैं देश से **पशु-भावना का उन्मूलन** करने का अधिक-से-अधिक प्रयत्न करूँगा। इससे अधिक मुझे और कुछ नहीं कहना है।

यह कहकर वे चुप हो गए। विवाद बन्द करने के उद्देश्य से मैंने प्रसङ्ग बदलते हुए **स्वामी जी** से पूछा—आप यहाँ कहाँ से पधारे हैं?

स्वामी जी ने कहा—मैं **हरद्वार** से इसी **प्रतिपदा** को यहाँ आया था। उस दिन **विन्ध्याचल** में जो सभा हुई थी, उसमें पण्डितों का प्रलाप सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। उसी समय मैंने निश्चय किया कि लोगों की धींगा-धींगी रोकने का कोई प्रयत्न होना चाहिए, नहीं तो हमारे इन **धार्मिक पवित्र पीठों** का भी विनाश हो जाएगा। **विन्ध्याचल** में लोगों से मिलकर विचार-विनिमय किया। बहुत से लोग मेरे विचारों से सहमत हुए। कुछ लोगों ने सक्रिय सहायता देने का भी वचन दिया। इन्हीं लोगों की सम्मति के अनुसार मैंने यहाँ आकर अपना आसन लगाया। तब से मैं बराबर अपने प्रवचन कर रहा हूँ। **एकादशी** को **विन्ध्याचल** में पण्डितों की जो सभा होगी, उसमें मेरा भाषण होगा। उसी सभा में **शाक्तों** की एक नई सभा क रने का मैं प्रस्ताव करूँगा।

मैंने कहा—आपका यह प्रयत्न प्रशंसनीय है। **शाक्तों का सङ्गठन** अवश्य होना चाहिए और यह महान् कार्य आप जैसे महात्मा के द्वारा ही सम्पन्न हो सकेगा।

इसके बाद हम दोनों आदमियों ने **स्वामी जी** को प्रणाम किया और वहाँ से चल पड़े। **अष्ट-भुजा** के दर्शन कर हम दोनों **विन्ध्याचल** को चले। मार्ग में **पण्डित जी** ने **स्वामी जी** की बड़ी निन्दा की। कहा —'यह **वामी** है। मद्य-मांस का प्रचार करेगा। पतित संन्यासी है।' इस तरह बहुत कुछ अपशब्द उनके प्रति कहे।

मैंने हँसकर कहा—आपको इस तरह नहीं कहना चाहिए। होंगे, देश में भिन्न-भिन्न प्रकार के मत-मतान्तर फैले हैं। उनमें एक यह भी सही। ईसाई, मुसलमानों के सम्बन्ध में जब आप कोई बात नहीं कहते, तब **वामी** लोगों ही ने क्या पाप किया है!

पण्डित जी बोले—पाप क्यों नहीं किया है? ये हमारे समाज के अङ्ग हैं। समाज में दुराचार फैलाते हैं। इसे हम कैसे सहन कर सकते हैं?

मैंने कहा—जब आपके समाज में तरह-तरह के दुराचार फैले हुए हैं और उन्हें आप नहीं रोक सकते, तब आप इन थोड़े से **वामाचारियों** पर ही क्यों खड्ग-हस्त हो रहे हैं?

'बात यह है कि ये अपने पापाचार को धर्म का रूप देते हैं।'

मैंने देखा कि **पण्डित जी** की विचार-धारा बहुत ही अनोखी है। इनसे बातचीत करने का कोई अच्छा निष्कर्ष न निकलेगा। अतएव मैंने प्रसङ्ग बदल दिया और इधर-उधर की बातें करते हुए अपने ठहरने के स्थान पर आ गए। वहाँ पहुँचने पर देखा कि पहाड़ के उक्त **स्वामी जी** की चर्चा छिड़ी हुई है। जो **पण्डित जी** अधिक विद्वान् और सभा-चतुर थे, उन्होंने कहा—खैर, कल सभा में देखेंगे। **स्वामी जी** का मैं डटकर विरोध करूँगा।

एकादशी का भगवती का शृङ्गार बहुत ही सुन्दर होता है। उस दिन मन्दिर में दर्शनार्थियों के ठट्ठ-के-ठट्ठ लग जाते हैं। जो भारी भीड़ होती है, उसका वर्णन नहीं हो सकता, परन्तु पण्डित-सभा में उस दिन बड़ी खलबली मची। ऐसा जान पड़ा कि यदि सभा में **स्वामी जी** भाषण करेंगे, तो सभा में दो दल हो जाएँगे और मार-पीट तक की नौबत पहुँच जाएगी। कुछ बुद्धिमान् व्यक्तियों के बीच-बचाव करने पर यह निश्चय हुआ कि पण्डित-सभा के विसर्जन के बाद **स्वामी जी** की सभा हो और उनकी वह सभा **शाक्तों** की खानगी सभा समझी जाय। इसकी सूचना **स्वामी जी** को दी

गई। **स्वामी जी** ने कहला भेजा—कोई हर्ज नहीं है। मैं तो **शाक्तों** को ही अपना सन्देश सुनाना चाहता हूँ। मुझे तो उन्हीं को जगाना है। मैं ठीक समय पर **सहदेव** के घर पहुँचूँगा।

यथा समय **स्वामी जी सहदेव** के घर पहुँच गए। मुझे अपने **पण्डा जी** से इस सभा की सूचना मिल गई थी। अतएव मैं भी वहाँ पहुँच गया था। जब मैं पहुँचा था, तब कोई ६०-७० आदमी वहाँ मौजूद थे। मेरे पहुँचने के बाद ही **स्वामी जी** आ गए। उनके आने के बाद सभा का कार्य प्रारम्भ हो गया और **स्वामी जी** ने उस समय जो भाषण किया, बहुत ही **हृदय-ग्राही** और मार्मिक था। उनके भाषण का सारांश यह था—'**विन्ध्याचल शाक्तों** का एक **परम पवित्र पीठ** है। ऐसे महत्त्व-पूर्ण **पचास पीठ** और हैं, जो देश के भिन्न-भिन्न स्थानों में स्थित हैं। **शाक्तों** के असङ्गठित होने के कारण इनकी व्यवस्था में बहुत कुछ अन्तर आ गया है और उन लोगों का प्राधान्य बढ़ता जा रहा है, जो **शाक्त-धर्म** के महत्त्व को नहीं जानते। अतएव हमें अपने **धर्म का महत्त्व** कायम करने के लिए **शाक्तों में नए जीवन का सञ्चार** करना होगा।' उन्होंने अपने भाषण में **शाक्तों की दयनीय अवस्था** का जो करुण चित्रण किया, वह सुनने की वस्तु थी। उनके भाषण का उपस्थित लोगों पर काफी प्रभाव पड़ा। भाषण की समाप्ति के बाद उपस्थित लोगों में से एक सज्जन ने कहा—**स्वामीजी,** आप यहाँ कुछ दिन निवास करें, तो सङ्गठन का कार्य हो सकेगा।

स्वामी जी ने कहा—आप लोग अपनी एक सभा बना लें। उससे मैं सहयोग करूँगा और उसका मार्ग-दर्शन भी करूँगा परन्तु मैं रह नहीं सकूँगा। मुझे तो अपना सन्देश जगह-जगह जाकर सुनाना है।

एक दूसरे सज्जन बोले—सभा के निर्माण का कार्य मैं अपने ऊपर लेता हूँ और संञ्चालन भी करूँगा, परन्तु उसका मार्ग-दर्शन करने के लिए यहाँ कुछ दिन तो आपको रहना ही पड़ेगा।

स्वामी जी ने कहा—सात-आठ दिन मैं यहाँ रहूँगा। आप प्रयत्न करें। इतने ही दिनों में सभा की स्थापना करके कार्य आरम्भ कर दीजिए।

सभी लोग सहमत हो गए और **स्वामी जी** वहीं **सहदेव जी** के यहाँ ठहर गए। इसके बाद जब सभा का विसर्जन हुआ, तो मैं अपने स्थान पर चला आया।

(२)

विन्ध्याचल प्रायः आते रहने के कारण मेरा वहाँ के लगभग सभी जगदम्बा-भक्तों से परिचय हो गया था, परन्तु **सहदेव जी** को मैं नहीं जान पाया था। मेरे **पण्डा जी** ने बताया—इनके पिता **सीता-कुण्ड** के बाबा **प्राणनाथ जी** के शिष्य थे और इस काल के मन्त्र-शास्त्रियों में अपना विशेष स्थान रखते थे। **बाबा प्राणनाथ** के एक शिष्य **शिवदान जी** थे, जो अपने समय में इस स्थान के **क्षेत्रपाल** कहलाते थे। **सहदेव जी** उन्हीं के शिष्य थे, परन्तु विशेष अध्ययन-शील होने के कारण ये लोगों के सम्पर्क में बहुत कम आते हैं। थोड़ी आय है, उसी से अपना निर्वाह कर लेते हैं। मैं तो कहूँगा कि इस समय इस क्षेत्र में इनके बराबर निष्ठावान् ब्राह्मण दूसरा नहीं है।

मैंने **पण्डा जी** से कहा—आपने इनका परिचय पहले और कभी नहीं दिया?

पण्डा जी ने कहा—परिचय देना बेकार था। ये तो किसी से मिलते ही नहीं। तब आप इनसे अपने मतलब की बातें कैसे कर सकते? मुझे तो आश्चर्य है कि इन्होंने यह सभा अपने यहाँ कैसे

होने दी तथा **स्वामी जी** को अपने यहाँ कैसे ठहराया!

इसके बाद मैंने भोजन किया और पड़कर सो रहा। दूसरे दिन नित्य-कर्म से निपटकर मैं **सहदेव जी** के यहाँ गया और वहाँ पहुँचकर देखा कि **स्वामी जी** बाहर एक तखत पर बैठे हुए हैं। मैंने जाकर प्रणाम किया। मुझे ऐसा जान पड़ा कि **स्वामी जी** अभी ही कहीं से घूम-फिरकर आए हैं। वे मुझसे कुछ कहने ही वाले थे कि इतने ही में मकान के भीतर से निकलकर **सहदेव जी** ने कहा— **स्वामी जी,** भीतर चलिए। यहाँ बैठना ठीक न होगा। लोग आएँगे और आपको अपनी-अपनी बातों से तङ्ग करेंगे।

स्वामी जी ने कहा—इसकी कोई चिन्ता नहीं है। मैं तो लोगों की सेवा के लिए हूँ।

सहदेव जी ने कहा—यह तो ठीक है, लेकिन मेरी समझ में भीतर बैठना ज्यादा ठीक होगा। इस पर **स्वामी जी** उठ खड़े हुए और **सहदेव जी** के पीछे हो लिए, लेकिन तुरन्त ही लौटकर मुझसे पूछा—कहिए, आप कैसे आए हैं?

मैंने कहा—मैं एकान्त में आपसे कुछ बातचीत करना चाहता हूँ।

स्वामी जी ने कहा—मैं एकान्त-वासी संन्यासी नहीं हूँ। मैं तो खुली बातचीत करता हूँ।

फिर हँसकर **स्वामी जी** बोले—पर इस समय तो आपको एकान्त ही मिल गया है और आइए, बातचीत हो।

दरवाजे के भीतर हमें एक आँगन मिला, जिसके एक ओर साफ-सुथरा कमरा दिखाई पड़ा। **स्वामी जी** उसी कमरे में जाकर बैठ गए। **सहदेव जी** और मैं भी वहीं एक तरफ चटाई पर बैठ गए। कदाचित् **सहदेव जी** का यह बैठक-खाना था। **स्वामी जी** ने बैठते ही मेरा परिचय पूछा। मैंने अपना परिचय संक्षेप में दे दिया। मेरा परिचय पाकर **स्वामी जी** ने प्रसन्नता प्रकट कर कहा —आप क्या पूछना चाहते हैं?

मैंने कहा—मैं प्रश्न करना तो नहीं, पर कुछ निवेदन जरूर करना चाहता हूँ। बहुत दिन नहीं हुए, इसी **विन्ध्याचल** में एक **अवधूत जी** से भेंट हुई थी। वे भी आप ही की तरह **शाक्तों के सङ्गठन** की बहुत बातें किया करते थे, परन्तु उनके प्रयत्न का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जो हाल पहले था, वही आज भी है।

स्वामी जी ने कहा—यह कोई बात नहीं। हम लोगों का धर्म है— काम करना। इसके सिवा और कुछ नहीं। वही मैं कर रहा हूँ। आज नहीं, तो किसी दिन तो सफलता अवश्य मिलेगी।

मैंने कहा—आपके प्रचार-कार्य से **अनधिकारियों** का बाहुल्य हो जायगा।

स्वामी जी ने कहा—और आज क्या हाल है? **अधिकारी** और **अनधिकारी** कहीं से पैदा नहीं होते। यह तो हम लोगों की अकर्मण्यता से अनधिकारी की वृद्धि होती है। अगर हम प्रचार करें, तो यही **अनधिकारी** 'अधिकारी' हो जाए, जिससे **धर्म की वृद्धि** होगी। यदि **धर्म का प्रचार** नहीं होगा, तो **अधिकारी** भी कुछ दिनों में **अनधिकारी** हो जाएँगे। हमारे धर्म का आज भयानक रूप से ह्रास हो गया है। इसके जिम्मेदार वही लोग हैं, जो अपने-आपको **अधिकारी** होने का झूठा गर्व करते हैं। वह **अधिकारी** किस काम का, जिसके सम्पर्क में आनेवाले साधक लोग **अनधिकारी-के-अनधिकारी** ही बने रहें। आपसे कुछ कहना नहीं है, आप स्वयं जानते होंगे इस बात को! हम लोगों के छोटे-छोटे जो **'मण्डल'** आज भी सारे देश में बिखरे पड़े हैं, उनमें दो-एक को छोड़कर

प्रत्येक में बहुतों को तो अपने **देवता का ध्यान** करना भी ठीक-ठीक न आता होगा। उनकी **पूजा** और **सपर्या** की बात तो अलग रही! ऐसी दशा में हममें से प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि इस **धर्म की प्रत्येक बात का उपासकों को बोध कराया जाय** और ऐसा होना तब तक सम्भव नहीं, जब तक हम आधुनिक ढङ्ग के प्रचार-कार्य को नहीं अपनाते।

मैंने पूछा—आधुनिक ढङ्ग के प्रचार-कार्य से आपका क्या मतलब है **महाराज**?

'यही कि **पत्र-पत्रिकाएँ** निकालकर **शाक्त-धर्म के महत्त्व का प्रतिपादन** करना। **तन्त्र-ग्रन्थों को लोक-भाषा में प्रकाशित** करना आदि-आदि ढङ्ग से **धर्म का प्रचार** करना होगा।'

मैंने कहा—क्या आप अपने पत्रों में **चक्रार्चनों, पञ्च-मकार, बलिदान** आदि का भी प्रकाश करेंगे!

स्वामी जी बोले—जो भी हमारे धर्म की बात होगी, वह सभी स्पष्ट और सरल भाषा में प्रकाशित करनी होगी, ताकि आबाल-वृद्ध-वनिता इस धर्म की सभी आवश्यक बातों से परिचित हो जाएँ।

मैंने कहा—मगर लोग क्या कहेंगे? **शाक्त** भले ही कुछ न कहें, लेकिन **अशाक्त** तो गजब ढा देंगे।

स्वामी जी ने साश्चर्य मेरी ओर देखा और कहा—ऐसा क्यों होगा?

मैंने कहा—सारे देश में **मद्य-पान, मांस-भक्षण** आदि का कितना व्यापक विरोध है! क्या आप यह नहीं जानते हैं? जब आपके पत्रों या पुस्तकों में इनका महत्त्व बताया जायगा, तब क्या ये आन्दोलन-कारी चुप बैठेंगे?

स्वामी जी ने कहा—आन्दोलन-कारी **शाक्तों के धर्म-प्रचार** में किसी प्रकार की बाधा नहीं डाल सकेंगे। कोई किसी भी **धर्म के प्रचार** में बाधक नहीं हो सकता। यह विचार-स्वातन्त्र्य का युग है। फिर **शाक्त-धर्म मद्य-पान, मांस-भक्षण** आदि का किस हद तक समर्थन करता है, यह भी एक विचारने की बात है। मैं तो यही कहूँगा कि उन आन्दोलन-कारियों की तरह **शाक्त** भी दुर्व्यसनों का विरोधी है, परन्तु उनकी विरोध-शैली जरूर भिन्न है। वह यह कि **शाक्त दुर्व्यसनों का परिष्कार कर उन्हें धर्म का रूप देने का प्रयत्न करता है। वह मानव प्रकृति को नियन्त्रण में रखकर 'मानव' को 'देवता' बनाने के मार्ग का निर्देश करता है।**

मैंने कहा—काम तो आपने बहुत बड़ा उठाया है। इसके सञ्चालन के लिए आपको धन और जन दोनों की आवश्यकता होगी।

'निस्सन्देह!', **स्वामी जी** ने कहा, 'दोनों ही सुलभ हैं। यदि हम सच्चाई के साथ महत्-कार्य का आरम्भ करेंगे और हममें सेवा की भावना होगी, तो विश्वास कीजिए, हम अपने प्रयत्न में सफल होंगे। **शाक्तों** का आज भी बहुत बड़ा समुदाय है। उनमें बड़े-बड़े विद्वान्, बड़े-बड़े रईस आदि से लेकर साधारण जन तक हैं। यदि हम निःस्वार्थ भावना से अपना कार्य चलाएँगे, तो इन्हीं में से बहुत से ऐसे धर्म-प्रेमी सज्जन मिल जाएँगे, जिनसे हमारा प्रयत्न सफल हो चलेगा। आज आप मुझे अकेला देख रहे हैं, परन्तु यदि **जगदम्बा** ने चाहा, तो दस वर्ष बाद आप मुझे हजारों के साथ पाएँगे। **विन्ध्याचल** के इस प्रधान पीठ में **सहदेव जी** के नेतृत्व में हम कार्य का आरम्भ कर रहे हैं। आज अभी-अभी हम दोनों इस स्थान के सभी **शाक्तों** के यहाँ जाकर बातचीत कर आए हैं और सभी ने उत्साह के साथ हमारा साथ देने का वचन दिया

है। आज शाम को बस्ती के बाहर जाकर उन लोगों से भी भेट करेंगे, जो यहाँ के प्रधान **शाक्त** कहे जाते हैं। दो ही चार दिन के भीतर हमें विश्वास है—हमारी सभा का सङ्गठन हो जाएगा।'

मैंने पूछा—तो आपकी यह सभा काम क्या करेगी?

'सबसे पहला काम सभा यह करेगी कि इस **पवित्र पीठ** में जो भिन्न-भिन्न **मण्डलियाँ** हैं, उन सबमें एकता स्थापित करेगी। इन **मण्डलियों** के आचार्यों में जो अनैक्य है, उसको दूरकर हम यहाँ सच्चे भ्रातृ-भाव की स्थापना करेंगे। इसके बाद इस बात का प्रयत्न करेंगे कि प्रत्येक आचार्य अपनी **मण्डली** के साधकों को **धर्म की शिक्षा** या तो स्वयं दे या फिर इस सभा में भेजकर उन्हें **धर्म की शिक्षा** प्राप्त करने का आदेश करे। सभा में प्रत्येक पर्व में सबके समक्ष **सविधि जगदम्बा का अर्चन** हुआ करेगा ताकि लोग यह जान सकें कि **तान्त्रिक अर्चन** किस तरह होता है। इसी तरह हम अपना कार्य आरम्भ करना चाहते हैं। इसके बाद ज्यों-ज्यों हमारा **सङ्गठन** आगे बढ़ेगा और हमें कुछ भक्तों से जब पर्याप्त आर्थिक सहायता का वचन भी मिल जाएगा, तब हम **पत्रादि के प्रकाशन** का भी प्रबन्ध करेंगे। मैंने एक देश-व्यापी दौरा करने का विचार किया है।'

मैंने कहा—आपका उद्देश्य महत्त्व-पूर्ण है। **शाक्तों** का यह बड़ा भारी सौभाग्य है कि आप आज इस **धर्म की रक्षा** के लिए इतने उत्सुक और तत्पर हैं।

स्वामी जी बोले—मैं तो आपसे भी कहूँगा कि आप भी मुझसे सहयोग करें।

मैंने कहा— मैं तो कलकत्ते में रहता हूँ। व्यवसायी आदमी हूँ। तथापि अपने भरसक मैं आपके इस पुनीत कार्य से अवश्य सहयोग करूँगा। आप जब कलकत्ते पधारें, तब मुझे भी दर्शन देने की कृपा करें।

मैंने अपना पता बतलाया। **स्वामी जी** ने बड़ी प्रसन्नता से अपनी नोट-बुक में मेरा नाम और पता लिख लिया। इसके बाद मैंने उनसे विदा ली और अपने स्थान को चला आया।

(३)

विन्ध्याचल में जहाँ मैं ठहरा था, वहीं जो और पण्डित लोग ठहरे थे, उनमें से एक सज्जन **चुनार** के निवासी थे। उन्होंने मुझसे कहा था कि आप चुनार के **दुर्गा-खोह** की भगवती का दर्शन अवश्य करें। उन्होंने उस स्थान की जो महिमा सुनाई थी, वह मुझे बहुत आकर्षक प्रतीत हुई थी। अतएव जब मैं **स्वामी जी** से विदा लेकर लौटा और अपनी यात्रा की तैयारी करने लगा, तो **चुनार की दुर्गाजी** की बात याद आ गई। दूसरे दिन स्टेशन जाकर मैंने **चुनार** का टिकट लिया। **चुनार स्टेशन** पर उतरकर मैंने अपना सामान स्टेशन-मास्टर के हवाले कर **दुर्गा-खोह** जाने की बात उनसे कही। स्टेशन-मास्टर **दुर्गा जी** के बड़े भक्त थे। उन्होंने स्टेशन के एक ब्राह्मण नौकर को मेरे साथ कर दिया। उसके साथ मैं **दुर्गाजी** के दर्शनार्थ चल पड़ा। मार्ग में वह ब्राह्मण भी **दुर्गा जी की महिमा** का बखान करता रहा। पहाड़ पर जब पहुँचा और वहाँ **हरसिङ्गार का जङ्गल** दिखाई दिया, तो **देवकीनन्दन** के **चन्द्रकान्ता** उपन्यास की याद आ गई। मैंने अपने मन में कहा कि **देवकीनन्दन जी** ने, जान पड़ता है, अपना उपन्यास प्रत्येक स्थान का निरीक्षण करके लिखा है। इतने में साथ के ब्राह्मण देवता ने कहा—लीजिए, हम लोग मन्दिर में आ गए।

खोह के एक ओर छोटा-सा मन्दिर था और उसके आगे कुछ हटकर एक **पक्का कुण्ड**-सा बना हुआ था। स्थान अत्यन्त मनोरम तथा एकान्त था। हम दो आदमियों के सिवा वहाँ और कोई न था। वहीं एक पत्थर पर बैठकर हम दोनों सुस्ताने लगे। थोड़ी ही देर में तबियत हरी-भरी हो गई। तब मन्दिर के पास जाकर हम दोनों ने **दुर्गाजी को सविधि प्रणाम** किया तथा उनकी **स्तुति** की। इससे छुट्टी पाने के बाद मैं इधर-उधर टहलने लगा। इतने ही में एक ओर से एक **पण्डित जी** आते हुए दिखाई दिए। **पण्डित जी** खोह की दूसरी ओर से आ रहे थे। जब वे समीप आ गए, तब मैंने नमस्कार करके उनसे पूछा—क्या यहाँ कोई बस्ती समीप है?

उन्होंने कहा—नहीं, यह तो पहाड़ है। पहाड़ के परे बस्ती है।

मैंने पूछा—क्या आप उधर ही से आ रहे हैं? वह बस्ती यहाँ से कितनी दूर है?

'मैं उधर से नहीं आ रहा हूँ। मैं तो **स्वामी जी** के दर्शन करने गया था। मैं यहीं रहता हूँ।'

'वे **स्वामी जी** कहाँ हैं?'

'इसी खोह में कुछ दूर एक मन्दिर है। वहीं **स्वामी जी** रहते हैं। क्या आप परदेशी हैं?'

'हाँ, मैं यात्री हूँ। दर्शनार्थ यहाँ आया था। क्या **स्वामी जी** अपने स्थान में होंगे?'

'हाँ, हैं। क्या आप उनके दर्शन करना चाहते हैं?'

'हाँ, दर्शन जरूर करूँगा।'

उन्होंने मेरे साथ के उस ब्राह्मण से कहा—**रामभरोस,** बाबू जी को **स्वामी जी** के स्थान को लिवा ले जाओ।

यह कहकर **पण्डित जी** अपनी राह लगे और मैं **रामभरोसे** के साथ खोह के भीतर घुसा। अब **रामभरोस** ने **स्वामी जी** की प्रशंसा करनी शुरू कर दी। वह उनको सिद्ध तपस्वी कहने लगा और उनके चमत्कार की कई बातें बतलाईं। मैंने पूछा—परन्तु तुमने तो पहले नहीं बताया था कि यहाँ एक **स्वामी जी** रहते हैं, और सो भी ऐसे?

उसने कहा—मैं क्या जानूँ कि आप **स्वामी जी** के भी दर्शन करेंगे?

उसके इस भोलेपन पर मुझे हँसी आ गई। उसके मुँह से **स्वामी जी** के चमत्कार की बातें सुनता हुआ ज्यों ही मैं **स्वामी जी** के स्थान में पहुँचा, मैं चकित रह गया। **स्वामी जी** ने दूर ही से मुझे पुकारकर कहा—आइए, रुक क्यों गए!

पास पहुँचकर मैंने प्रणाम किया और एक आसन पर बैठते हुए पूछा—आप यहाँ कहाँ?

उन्होंने कहा—मैं यहाँ कल ही रात की गाड़ी से आ गया हूँ।

'और **विन्ध्याचल का प्रचार-कार्य?**'

वे हँसकर चुप हो रहे। कुछ क्षण बाद उन्होंने कहा—मैंने उस कार्य को वहाँ छेड़कर भूल की। जगदम्बा की कृपा से उसका अनुभव मुझे जल्दी ही हो गया। इसी से मैंने वहाँ से चला आना ही अच्छा समझा।

मैं उनकी बात का आशय नहीं समझ पा रहा था। मेरे मनोगत भाव को ताड़कर उन्होंने फिर कहा —उस दिन मुझसे भेंटकर आप जब चले गए थे, उसके बाद ही **विन्ध्याचल** के एक **पण्डित जी** आए और उन्होंने सभा के सम्बन्ध में तथा हमारे कार्य के सम्बन्ध में अनेक अनर्गल बातें कहीं। उनकी बातचीत मैं चुपचाप सुनता रहा। अन्त में मुझसे अपनी बातों का उत्तर न

पाकर वे बकते-झकते वहाँ से चले गए। उनके कहने का मतलब यह था कि मैं **विन्ध्याचल** में शाक्तों का प्रधान व्यक्ति बनना चाहता हूँ और वहाँ के ब्राह्मणों की जीविका का अपहरण करना चाहता हूँ, सो जब तक मुझमें दम है, यह सब कार्य आप यहाँ नहीं करने पाएँगे।' उनके चले जाने पर **सहदेव जी** ने भय से काँपते हुए मुझसे कहा—'**स्वामी जी,** यह यहाँ का बड़ा प्रभाव-शाली व्यक्ति है। मैं तो इसके विरुद्ध आपका साथ दे ही नहीं सकता और कदाचित् दूसरे लोग भी नहीं दे सकेंगे। यदि आप दुराग्रह कर यहाँ अपना सङ्गठन-कार्य चलाएँगे भी, तो किसी-न-किसी दिन यह आदमी कोई भयानक उपद्रव कर बैठेगा।' इसी प्रकार की बातें दूसरे लोगों ने भी कहीं। वहाँ का रङ्ग-ढङ्ग जब मैंने इस प्रकार का देखा, तब हट आना ही अच्छा समझा। ऐसी स्थिति में, आप ही बताइए, मैं क्या कर सकता था? वहाँ के वातावरण से चित्त अतीव विक्षुब्ध हो उठा था, अतएव यहाँ चला आया।

मैंने पूछा—क्या यही आपका स्थान है?

उन्होंने कहा—मैं तो **परिव्राजक** हूँ। मेरे एक बन्धु का यह स्थान है। वे उधर भोजन बना रहे हैं। इतने ही में दूसरे **स्वामी जी** भी आ गए और बोले—भोजन तैयार है, चलिए।

मैंने दूसरे **स्वामी जी** को भी प्रणाम किया। **स्वामी जी** ने मेरा परिचय उन दूसरे **स्वामी जी** को दिया। तब उन्होंने मुझसे भी कहा—आप भी आइए। यहाँ जङ्गल में आप कहाँ क्या खाएँगे!

मैंने कहा—आपका प्रसाद अवश्य ग्रहण करूँगा?

मैं **स्वामी जी** के पीछे-पीछे उनकी भोजन-शाला में गया। दूसरे **स्वामी जी** ने हम सबको थोड़ा-थोड़ा फलाहार दिया और बाद को मठा पीने को दिया। खा-पीकर हम लोग फिर उसी स्थान पर आ गए। दूसरे **स्वामी जी** ने **रामभरोस** को भी फलाहार और मठा दिया। अब हम सब लोग फिर अपने-अपने आसन पर बैठ गए। दूसरे **स्वामी जी** भी एक ओर विराजमान हो गए। दूसरे **स्वामी जी** ने मुझसे कलकत्ते के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें पूछीं, जिससे वे कलकत्ते से भले प्रकार परिचित जान पड़े। साथ ही इस बात का भी सङ्केत मिल गया कि वे भी एक **शाक्त साधक** हैं। मैंने उनसे पूछा कि—आप **स्वामी जी** के प्रचार-कार्य से सहमत हैं?

कुछ सोचकर उन्होंने उत्तर दिया—सहमत हूँ भी और नहीं भी।

मैंने पूछा—ऐसा क्यों?

उन्होंने कहा—सहमत यहाँ तक हूँ कि जो योग्य व्यक्ति हों, उन्हें **मार्ग का रहस्य** बताया जाय और कुछ नहीं। व्याख्यान देना, पादड़ियों की तरह गली-गली में **शाक्त-धर्म के रहस्य** को बताते फिरना, मैं अच्छा नहीं समझता।

इस पर विन्ध्याचलवाले **स्वामी जी** ने कहा—ऐसे ही विचारों से आज **शाक्त धर्म** वर्तमान स्थिति को प्राप्त है। हमारे बन्धुवर योग्य व्यक्तियों को **शाक्त धर्म का उपदेश** करना चाहते हैं! मैं इनसे पूछता हूँ कि ये इतने दिन से इस खोह में पड़े हैं, **धर्मोपदेश** के लिए कोई व्यक्ति इन्हें मिला? हमारे मार्ग के आचार्यों का आज ऐसा ही मनो-भाव है। धर्म गिरता चला जा रहा है, धर्म के नाम पर कितना भ्रष्टाचार फैलता चला जा रहा है, किन्तु इन महानुभावों को इस ओर ध्यान देने की फुरसत नहीं है। ये सब अपना ही कल्याण चाहते हैं!

दूसरे **स्वामी जी** कुछ नहीं बोले। मैंने कहा—परन्तु आप भी तो भाग खड़े हुए हैं।

'हाँ, इस समय जरूर भाग खड़ा हुआ हूँ, परन्तु अपने निश्चय से हटा नहीं हूँ। शीघ्र ही मैं अपना कार्य प्रारम्भ करूँगा। कब और कहाँ, यह निश्चय-पूर्वक अभी नहीं कह सकता।'

थोड़ी देर चुप रहकर वे फिर बोले—देखिए, यह **युग-धर्म** है। हमें इसका प्रचार पादड़ियों की तरह ही करना होगा। योग्य व्यक्ति नहीं मिलेंगे, तो हम अपने उपदेशों से उन्हें योग्य बनाएँगे। एक कठिनाई जरूर है। इस मार्ग में धर्माचार्यों ने बड़ी गुट्ठल इमारत जोड़ दी है। इसको हटाकर हमें एक सामान्य और सो भी **सरल उपासना-पद्धति** तैयार करनी होगी।

मैंने पूछा—गुट्ठल इमारत से आपका मतलब क्या है?

'यही पण्डितों का **सम्प्रदाय-वाद!** उनका **आम्नाय-भेद,** उनका टेढ़ा-मेढ़ा **अर्चन-विधान!**'

मैंने कहा—तो क्या इन **प्राचीन विधि-विधानों** को आप त्याज्य समझते हैं?

'अवश्य! मूल **आगम-ग्रन्थों** के आधार पर जो क्रियाएँ स्थिर नहीं हैं, उन्हें छोड़ना ही पड़ेगा। प्रान्त-भेद से **उपासना-क्रम** में जो घट-बढ़ है, उसमें एक-रूपता लानी ही होगी। कहने का मतलब यह है कि हमें अपना मार्ग मूल **आगम-ग्रन्थों** के आधार पर ही निर्दिष्ट करना होगा, क्योंकि वे स्वतः प्रामाण्य हैं। **रहस्य-ग्रन्थ, निबन्ध-ग्रन्थ, पद्धतियाँ** उनके आगे प्रामाणिक नहीं हैं।'

मैंने कहा—परन्तु **आगम-ग्रन्थ** मिलते ही कहाँ हैं?

'मिलते हैं! कई एक तो छप भी गए हैं। उनका अध्ययन करके **शाक्त-साधना** की एक सरल प्रणाली निर्दिष्ट कर लेना कोई कठिन काम नहीं। आज **शाक्त-धर्म** में **योगाचार, अघोराचार, चीनाचार** आदि-आदि न मालूम कैसे और कितने **आचारों** का समावेश हो गया है। यह सब पञ्च-मेल मिठाई काम नहीं दे सकेगी। हमें यह सब एक ओर रखकर अपने मार्ग का **आगमोक्त विधान** तैयार करना होगा। तभी हम लोगों को इस मार्ग की ओर आकृष्ट कर सकेंगे। वर्तमान रूप में जनता उसको ग्रहण करने में सक्षम नहीं होगी।'

मैंने कहा—आपका यह कार्य तो किसी एक के मान का नहीं है और कदाचित् आपसे सहमत भी बहुत कम लोग हों।

स्वामी जी बोले—हाँ, आप ठीक कहते हैं, परन्तु हम इसकी चिन्ता नहीं करते हैं। कोई सहमत हो या न हो, **जगदम्बा** की यदि इच्छा होगी, तो उनके धर्म का अवश्य प्रचार होगा और चूँकि जब **आगम शास्त्र** कहता है कि इस युग के लिए **आगम-धर्म** ही श्रेयस्कर है, तब यह उसकी इच्छा ही है। हमको अपना कार्य सच्चाई के साथ करना चाहिए और यह सच्चाई हमें तभी प्राप्त होगी, जब हम **चौंसठ आगमों** में से किसी एक को अपना आधार बनाकर आगे चलेंगे। आपको कदाचित् पता नहीं है कि बहुत से **तन्त्र-ग्रन्थ** भी बना डाले गए हैं और उनके वचन **आगम-ग्रन्थों** ही की तरह **शाक्तों** में आदर पा रहे हैं! आज **शाक्तों** में ऐसी ही भेड़ियाधसान मची हुई है। किसी **तन्त्र** का नाम लेकर कोई श्लोक पढ़ दिया, वह श्लोक **शाक्तों** के लिए ब्रह्म-वाक्य की तरह मान्य होगा, भले ही इस श्लोक में बताई गई बात **मूल आगम-ग्रन्थों** के आदर्श के विपरीत हो! एक बार मैं **काशी जी** गया था। वहाँ एक साधक से भेंट हो गई। बातचीत में उसने मुझे एक श्लोक सुनाया,

जिसमें **पञ्चामृत-पान** की विधि थी। मैंने उससे पूछा कि 'यह किस **तन्त्र** का वाक्य है?' उसने एक नाम बता दिया। मैंने कहा कि 'यह तो **चौंसठ आगमों** में नहीं है।' उसने कहा कि **आगम** न सही, **तन्त्र** तो है। मैंने बहुतेरा उसे समझाया कि यह 'तन्त्र' **बौद्ध तन्त्र** है और **पञ्चामृत-पान** बौद्ध तान्त्रिकों का आचार हो सकता है, हम लोगों का नहीं, परन्तु वह नहीं माना और मुझसे बराबर हुज्जत करता रहा। अन्त में मैंने हार मान ली। ऐसी ही कितनी ही बातें आज के **शाक्तों** में प्रचलित हैं और वे यह जानना भी नहीं चाहते कि उनका क्रिया-कलाप **आगम** के आदर्शों से मेल खाता है या नहीं। यह सब **अनाचार** रोकना उन व्यक्तियों का काम है, जो जानते हैं। ऐसे आदमियों को आगे आना चाहिए। मैं अपनी यात्राओं में अनुभव कर चुका हूँ कि इस महत्त्व-पूर्ण कार्य को करने की कितनी अधिक आवश्यकता है। मैंने यह भी अनुभव किया है कि यह कार्य **पीठों** के **शाक्तों** तथा **शाक्त**-धर्माचार्यों के बीच में न कर **गृहस्थ शाक्तों** के बीच में करने से अवश्य सफलता मिलेगी। गृहस्थ साधक **पीठ-स्थानों** के साधकों की अपेक्षा अधिक संयम-शील होते हैं। साथ ही **शास्त्र की मर्यादा का दृढ़ता से पालन** करना भी जानते हैं। **पीठ-स्थानों** में तो अधिकतर **सिद्धों** का ही जमाव रहता है। ऐसे लोग अपने आगे **शास्त्र** को कैसे मान सकते हैं?

यह कहकर **स्वामी जी** चुप हो रहे। मन्द-मन्द मुस्कराते हुए दूसरे **स्वामी जी** ने कहा—मेरे भाई ने जो कुछ कहा है, वह अक्षर-अक्षर ठीक है, परन्तु आज देश में जो **धर्म-ग्लानि** है, उसके आगे हम सबकी क्या चल सकती है? मैंने देखा है कि अन्य धर्मों के अनुयायी **गुरु** के पास गए, **दीक्षा** ली, घर जाकर अपने काम में लगे। साथ ही गुरु के बताए **उपासना-क्रम** से **भगवद्-भजन** भी करने लगे। उनमें कोई भी ऐसी आकांक्षा नहीं रखता कि **गुरु** का बताया हुआ उनका **मन्त्र** उन्हें ऐसी **सिद्धि** प्रदान कर दे कि वे बात-की-बात में जो भी चाहें कर सकें। इधर **शाक्त-धर्म** का यह हाल है कि जो भी इस मार्ग में आना चाहता है, केवल यही उद्देश्य लेकर आता है कि उनका **गुरु** उन्हें तत्काल ही **सिद्ध** बना देगा और वह उनके बताए हुए मार्ग से **देवता का साक्षात्कार दर्शन** कर लेगा! इधर **शाक्त धर्म** में ऐसे **गुरुओं** का पूर्ण अभाव है। यह जरूर है कि **शाक्त धर्म** की साधना के द्वारा **विलक्षण सिद्धियाँ** प्राप्त हो सकती हैं, परन्तु ऐसे साधक भी तो नहीं हैं और न उनकी विधियाँ बतानेवाले **गुरु** ही हैं। इसी से आज **शाक्त-धर्म** का अखाड़ा खाली-सा दिखाई दे रहा है। अब हमारे ये भाई साहब उसे ऐसा रूप देना चाहते हैं कि इस धर्म में आनेवाले भी **गुरु** के पास आएँ, **मन्त्र** कान में सुनें और घर में जाकर अपना काम-धाम करते रहें और उनका बताया हुआ **मन्त्र** भी जपा करें। बस छुट्टी!

यह कहकर वे जोर से हँस पड़े। हम लोग भी हँस पड़े। समय बहुत हो गया था। अतएव मैंने विन्ध्याचलवाले **स्वामी जी** से कहा—मैं आज ही की गाड़ी से कलकत्ता जाऊँगा। अतएव आज्ञा चाहता हूँ। जाने से पहले मैं आपसे एक अनुरोध करना चाहता हूँ। आप अब जब अपना प्रचार-कार्य आरम्भ करें, तो उसकी सूचना मुझे देने की अवश्य कृपा करें। मैं यद्यपि इस योग्य नहीं हूँ कि आपकी सम्यक्

रूप से सहायता कर सकूँ, परन्तु यथा-शक्ति सहायता अवश्य करना चाहता हूँ। यह भी निवेदन करूँगा कि इस महत्व-पूर्ण कार्य में हमें ऐसे व्यक्तियों का सहयोग पाना पड़ेगा, जो अपनी बात के धनी हों और धुन के पक्के हों। आपका कार्य बड़े महत्त्व का है। अतएव आपकी योजनाओं को अवश्य कार्य का रूप मिलना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि आपकी योजनाओं की पूर्ति के लिए जहाँ निष्ठावान कार्य-कर्ताओं की जरूरत है, वहाँ काफी अधिक धन की भी जरूरत है। यदि आप कलकत्ते को केन्द्र बनाकर अपना कार्य प्रारम्भ करना चाहें, तो वहाँ आपको आदमी भी मिलेंगे और आवश्यक धन भी।

स्वामी जी ने हँसकर कहा—तो क्या मैं आपके साथ कलकत्ता चलूँ?

मैंने कहा—इसे मैं अपना सौभाग्य समझूँगा। आप ही नहीं, ये दूसरे **स्वामी जी** भी चलें। इनका तो वहाँ ऐसे लोगों से भी परिचय है, जो इस महत् कार्य में आपकी मुझसे अधिक सहायता करेंगे।

दूसरे **स्वामी जी** तो कुछ न बोले, परन्तु विन्ध्याचलवाले **स्वामी जी** ने उनकी ओर देखते हुए कहा —इनकी सहायता यदि मिल जाती, तो फिर क्या कहना था! ये तो पहुँचे हुए हैं। ये चाहें, तो यह कार्य धड़ल्ले से चल निकले, परन्तु इन्होंने **'अमृत'** के स्थान पर **'तक्र'** के सेवन का व्रत ले लिया। खैर, ये तो नहीं आएँगे। (मेरी ओर मुँह करके कहा) मैं अवश्य आऊँगा। मेरी डायरी में आपका नाम-पता दर्ज है।

मैंने कहा—जब आना ही है, तो मेरे साथ ही क्यों न चलें?

'नहीं, इस समय नहीं चल सकता। अभी कुछ समय तक इनके पास रहना चाहता हूँ।'

'तो कब तक आइएगा?'

'यह निश्चय-पूर्वक नहीं कह सकता। यहाँ से पहले मैं **मिथिला** जाऊँगा। वहाँ से होते हुए **कलकत्ता** आऊँगा।'

मैंने कहा— मैं बराबर **कलकत्ते** ही में तो नहीं रहता। यदि मैं अपने स्थान में न मिलूँ, तो आप वहाँ ठहरिएगा। खबर पाते ही मैं वहाँ होऊँगा। मेरे घरवाले मुझे आपके आने की सूचना तत्काल दे देंगे। साथ ही वे आपकी यथा-शक्ति सेवा भी करेंगे।

यह कहकर मैंने **दोनों स्वामियों को प्रणाम** किया और वहाँ से स्टेशन को चला आया। स्टेशन में स्टेशन मास्टर साहब ने मेरी बड़ी खातिर की। भोजन आदि की व्यवस्था पहले से ही कर ली थी। भोजन करके रात की गाड़ी से मैं कलकत्ते को रवाना हो गया।

* * *

साधक का संवाद

८. गोपन

एक मित्र के घर से लौट रहा था। मार्ग में **हलदार महाशय** से भेंट हो गई। दो कुलियों के सिर पर टोकरे रखाए बाजार से आ रहे थे। खड़े होकर मैंने नमस्कार किया और हँसकर पूछा, 'क्या दावत-आवत का आयोजन है?'

मेरी आवाज सुनते ही **हलदार महाशय** मुड़कर मेरे पास आ खड़े हुए थे और नमस्कार का उत्तर देने के बाद बड़े ही मधुर भाव से कहा, 'हाँ भाई, माँ का पूजन है, दावतें तो बड़े आदमियों के यहाँ होती हैं।' फिर जोर से हाथ पकड़कर एक विशेष पुलक के साथ कहा, 'तुम भी आना। एक अच्छे साधक आए हैं। अच्छा सत्सङ्ग होगा।' यह कहकर वे चल पड़े। कुछ दूर चलने के बाद फिर लौट पड़े और पुकारकर कहा, '**शर्माजी,** सुनो तो।' मैं उनके पास गया। उन्होंने कहा—आजकल **राखाल** नहीं दिखाई देता। **वीरेन्द्र** भी बहुत दिन से नहीं दिखाई देता। इन दोनों को अपने साथ लेते आना।

मैंने कहा—इधर दोनों पश्चिम में थे, अभी-अभी लौटे हैं। यदि घर पर होंगे, तो जरूर लेता आऊँगा।

उन्होंने कहा—अच्छी याद आई! उनके बाग में अच्छा कटहल होता है। एक कटहल भी लेते आना और कटहल न हो तो केला जरूर लाना।

मैंने कहा—मुझे कोई चीज लाने के लिए आपने आज्ञा नहीं दी?

उन्होंने हँसकर कहा—'अरे भाई, तुम लोगों को क्या कहना है! तुम लोग तो सभी नियमादि जानते हो। फिर तुम्हारे यहाँ तो बँधी व्यवस्था चलती है।' यह कहकर वे हँसकर चल दिए।

मैं घर आया, तब देखता हूँ **वीरेन्द्र** कमरे में बैठा हुआ है। मैंने हँसकर कहा कि—तुम तो खूब मिले, तुम्हारे यहाँ जाने से बचा।

वीरेन्द्र—सो तो नहीं होगा। माँ ने तुम्हें बुलाया है और इसी क्षण बुलाया है।

मैंने चकित होकर पूछा—कुशल तो है?

उसने हँसकर—हाँ, चलो। जल्दी करो। जब तक नहीं पहुँचोगे, सबको पेट दाबकर बैठे रहना पड़ेगा।

मैं समझ गया। मैंने हँसकर कहा— अच्छा, आता हूँ।

भीतर जाकर मैंने **पण्डित जी** से कहा— आप सब लोग भोजन कर लें, मैं भोजन नहीं करूँगा। शाम को मुझे दूसरी जगह जाना है। बहुत अच्छी कचौड़ियाँ और पूड़ी तथा हलुवा मेरे लिए तैयार रखिएगा। चार-पाँच आदमियों के मतलब भर का सामान हो। ठीक वैसा ही बनाना, जैसा पिछली बार बनाया था। शाम तक लौटूँगा।

घर से बाहर निकलकर मैंने एक टैक्सी की और मैं **वीरेन्द्र** को लेकर चल पड़ा। मार्ग में मैंने उससे **हलदार महाशय** के निमन्त्रण की बात कही। **वीरेन्द्र** ने कहा—**हलदार महाशय** के यहाँ तो जरूर चलना चाहिए। यदि **बङ्गाल** में कहीं पूजा होती है, तो एक इन्हीं के घर होती है। गत वर्ष मैं **दादा** के साथ गया था। तुम उन दिनों **मथुरा** में थे। वहाँ की पूजा देखकर मैं अवाक् रह गया। पूजा का विधि-विधान तो मैंने और भी जगहों में देखा है, परन्तु पूजा-काल में इस घर के लोगों में जो सात्त्विक भाव आ जाता है, वह और जगह मुझे आज तक देखने को नहीं मिला।

मैंने कहा—तुम ठीक कहते हो। **हलदार**

महाशय का परिवार-का-परिवार **माँ** का परम भक्त है। उनके घर के सभी लोगों के चेहरे से **माँ** का भाव टपकता रहता है।

इस तरह बातचीत करते हम लोग घर पर आ पहुँचे। टैक्सी से उतर भी नहीं पाए थे कि देखा कि **माँ** दरवाजे पर खड़ी हैं। जल्दी-जल्दी चलकर मैंने पास जाकर चरणों पर अपना सिर रख दिया। भीतर ले जाकर उन्होंने कमरे में बैठाया और कहा कि—कुछ सुस्ता लो और तब चलकर भोजन करो। मैंने तेरे लिए आज झोल भी बनाया है।

मैंने कहा— माँ, झोल तो मैं जरूर खाऊँगा और **दादा** कहाँ हैं?

वे बोलीं—'आज अष्टमी है ना, अनुष्ठान कर रहे हैं। चलो, तुम्हीं लोग भोजन करो।' यह कहकर वे उठ खड़ी हुईं और भोजन-गृह की ओर चली गईं।

हम लोग भी उनके आवाज देने पर हाथ-पैर धोकर भोजन-शाला में गए और अपनी-अपनी जगह बैठ गए। माँ ने भोजन परोसकर हम लोगों के सामने रख दिया और हम भोजन करने लगे मैंने कहा— आज **काली-बाड़ी** के **हलदार महाशय** ने हम लोगों को आमन्त्रित किया है। **दादा जी** को भी बुलाया है। उनके यहाँ पूजन है।

माँ प्रसन्न होकर बोलीं— बेटा, जरूर जाओ। **हलदार** के घर को मैं **'पीठ'** के तुल्य मानती हूँ। पर तेरे **दादा** तो न जा सकेंगे। उनका तो आज अनुष्ठान है।

मैंने कहा—उन्होंने घर के बाग का कटहल और केला माँगा है।

माँ प्रसन्न होकर बोलीं—आज देहात से कुछ कटहल आए हैं। उनमें एक बहुत अच्छा है और दो बाग के कटहल ले लेना। केले की एक घँवर भी ले लेना। कब जाओगे?

मैंने कहा—सन्ध्या समय जायँगे।

इस तरह बातचीत करते हुए हम लोगों का भोजन समाप्त हुआ। कमरे में आकर हम दोनों बातचीत करने लगे। बातचीत करते-करते हम लोग सो गए। ५ बजे उठे, तब देखा कि **माँ** चाय का टेबुल सजाए बैठी हैं। हाथ-मुँह धो और कुल्लाकर हम दोनों चाय पीने बैठे। चाय पी चुकने के बाद अब हम शहर जाने को तैयार हुए।

माँ ने कहा— बेटा, उस कोने में तेरा सब सामान तैयार रखा है।

वीरेन्द्र बाहर जाकर एक टैक्सी ले आया। घर के नौकर ने कटहल और केले के घँवर ले जाकर टैक्सी में रख दी। हम लोग टैक्सी पर बैठे और टैक्सी चली। घर पहुँचकर मैं अपने घर का सामान ले आया। अब वहाँ से हम काली-घाट को चले। टैक्सी शीघ्र ही **हलदार महाशय** के द्वार पर जाकर खड़ी हुई। हलदार महाशय के घर का उड़िया नौकर दरवाजे पर खड़ा था। मेरा संकेत पाकर वह केले की घँवर और कटहल एक-एक करके सब सामान उठा ले गया। हमने टैक्सी छोड़ दी और **हलदार महाशय** के घर में प्रवेश किया। **हलदार महाशय** आकर हमें अपने कमरे में लिवा ले गए। वहीं वे **महात्मा** भी बैठे थे, जिनके आने की सूचना **हलदार महाशय** ने मुझे दी थी। उन्होंने **महात्मा जी** को मेरा परिचय दिया। हम दोनों ने उनका समुचित अभिवादन किया। उनका आदेश पाकर हम एक चटाई पर बैठ गए। चार-पाँच सज्जन और बैठे थे। **महात्मा जी** उनसे किसी प्रसङ्ग पर कुछ कह रहे थे। मेरे बैठ जाने पर उन सज्जनों में से एक ने पूछा—तो क्या हुआ महाराज?

महात्मा जी बोले—'होना क्या था? मैं तो किसी से वाद-विवाद करता नहीं। वे सज्जन बे-मतलब ही **शाक्तों की निन्दा** कर रहे थे। इसी पर मैंने कहा कि आप एक ऐसे **सम्प्रदाय** के हैं, जिसमें **सत्य धर्म** को उच्च स्थान दिया गया है, परन्तु इस समय आप उसका बुरी तरह अपलाप कर रहे हैं। **शाक्त-धर्म** में **मूर्ति-पूजा** को कोई महत्त्व नहीं है। तब यह कहना कि **जगन्नाथ जी** के मन्दिर की अश्लील मूर्तियाँ **शाक्तों** की कला की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है, तो आपका यह कथन सत्य की

हत्या करने के बराबर है। **शाक्तों** को न **जगन्नाथ जी** के मन्दिर से कोई मतलब है और न उस मन्दिर की मूर्तियों से। यदि वे वहाँ जाते हैं, तो दूसरे यात्रियों ही की भाँति।' यह कहकर **महात्मा जी** चुप हो रहे। मैंने पूछा—तो फिर वे किसकी मूर्तियाँ हैं?

उन्होंने कहा—यदि आप **तिब्बत** की ओर जायँ, तो आपको पता लग जाएगा कि वे मूर्तियाँ किन्होंने बनवाई होंगी।

उन सज्जनों में से एक सज्जन ने कहा— हाँ **स्वामी जी,** परन्तु ये निन्दक ऐसी बातों को कब मानने लगे? अभी उस दिन एक उपदेशक महाशय एक पुस्तकालय में भाषण कर रहे थे। उन्होंने कहा कि **'शाक्तों** ने सभी ग्रन्थों को भ्रष्ट कर डाला है। शास्त्रों में जहाँ भी कहीं **मांस-मदिरा** के खाने-पीने की बात लिखी मिले, यही समझो कि **शाक्तों** ने अपनी ओर से बनाकर वहाँ वह सब लिख दिया है।'

महात्मा जी मुस्कराते हुए बोले—परन्तु इस प्रकार के निन्दा-वाद से **शाक्तों** का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, **सत्य** दब नहीं सकता! भला इन भले आदमियों से कोई पूछे कि यदि **शाक्तों** ने धर्म-ग्रन्थों में **मांस-मदिरा** के खान-पान के सम्बन्ध में बनाकर श्लोक लिखे होंगे, तो अपने घर की ही पुस्तकों में लिखे होंगे। जो **शाक्त** नहीं हैं, उनके घर की उन पुस्तकों में वे श्लोक नहीं लिखे गए होंगे, परन्तु ऐसी प्रतियाँ देश में नहीं पाई जाती हैं। उस तरह के वचन तो **शाक्त** क्या अशाक्त, सभी के घरों की पुस्तकों में समान रूप से मिलते हैं। वास्तविक बात तो यह है कि ये लोग अपने प्रचार के आगे **सत्य-असत्य** की परवाह नहीं करते। इधर सर्व-साधारण लोग उतने विज्ञ नहीं कि उपदेशकों के वाक्-छल को समझें।

एक अन्य सज्जन बोले—**महात्मा जी,** एक जमाने से **शाक्त-धर्म** की निन्दा का प्रचार इस देश में व्यापक रूप से हो रहा है। इसका प्रतीकार तो होना ही चाहिए।

महात्मा जी मौन ही रहे। इसी बीच में चार-पाँच अन्य सज्जन वहाँ आ गए। **हलदार महाशय** ने उन सबका एक-एक करके **महात्मा जी** को परिचय दिया।

ये सब लोग हमारे भी परिचित थे। इनमें एक सज्जन **चारू बाबू** बड़े अच्छे गायक थे। वे केवल **माँ** के भक्ति-परक गीत ही गाया करते थे। **हलदार महाशय** ने उनका परिचय देते हुए उनकी यह विशेषता भी बताई थी। अतएव **महात्मा जी** ने उत्सुकता के साथ **चारू बाबू** को सम्बोधित करके कहा—**बाबू, माँ** का गुण-कीर्तन क्या मुझे आप नहीं सुनाएँगे?

चारू बाबू ने बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा—'अवश्य सुनाऊँगा।' यह कहकर उन्होंने गाना प्रारम्भ कर दिया। थोड़ी देर तक बड़ा आनन्द रहा। **चारू बाबू** ने जब गाना बन्द कर दिया, तब **महात्मा जी** ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। सचमुच वे बहुत सुन्दर गाते थे।

इसी बीच में **हलदार महाशय** ने आकर कहा—'अब हम सब लोगों को पूजा-गृह में पधारना चाहिए।'

इस पर **महात्मा जी** उठ खड़े हुए। हम सब लोगों ने उनका अनुसरण किया और यथा-क्रम हाथ-पैर धोकर पूजा-गृह में प्रवेश किया। **हलदार महाशय** ने सबको आसनों पर बिठाया। जब सब लोग बैठ गए तब उन्होंने **महात्मा जी** से कहा—कृपा-पूर्वक आज आप **आचार्य** के आसन पर विराजमान हों और अर्चन करें।

महात्मा जी ने कहा—**हलदार महाशय,** इस घर में **आचार्य** के आसन पर **हलदार** के अतिरिक्त और कोई नहीं बैठ सकता है।

इस पर **हलदार महाशय** चुपचाप आसन पर बैठ गए और पूजन प्रारम्भ किया।

मैं **हलदार महाशय** के पूजन में कई बार शामिल हो चुका हूँ और प्रत्येक बार मुझे नया-नया अनुभव हुआ है। इस बार यह विचित्र बात देखने में आई कि जब-जब उनको जिस

वस्तु की आवश्यकता पड़ी, तब-तब वह वस्तु बिना उनके माँगे ही उनके घर की लड़कियाँ उन्हें बराबर आकर देती गईं। एक क्षण के लिए भी न तो रुकना पड़ा और न एक क्षण पहले वह वस्तु लाकर उनके पास रखी ही गई। हम सब लोग भी अपने **न्यास-ध्यान-जप** में बराबर लगे रहे। **पुष्पाञ्जलि** उस दिन की सी वहाँ भी और पहले कभी मैंने नहीं देखी थी। **पुष्पाञ्जलि** के बाद उपस्थित साधक **तर्पण-क्रिया** में संलग्न हुए। बीच-बीच में **चारू बाबू** अपनी अलग आनन्द-वर्षा करते जा रहे थे। एक सज्जन ने यह प्रश्न कर दिया कि 'आजकल **शाक्त-धर्म** पराभव को प्राप्त है। इसके अभ्युदय का कोई उपाय होना चाहिए।'

महात्मा जी ने गम्भीर स्वर में कहा—**हलदार महाशय** के पूजा-गृह में तो कम-से-कम आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए थी। फिर **शाक्त-धर्म** का पराभव ही कहाँ हो रहा है? आज भी **भारत** की पवित्र भूमि में **माँ** के नाम का अबाध रूप से व्यापक प्रचार है। कौन नहीं जानता कि वर्तमान युग में इस देश की एकमात्र प्रधान पुस्तक **सप्तशती** ही है। फिर इसके सिवा **भारत** के प्रत्येक प्रान्त के निवासियों में जो सम्पन्न, सभ्य तथा शिक्षित हैं, उनमें भी **शाक्तों** की कम संख्या नहीं है। **शङ्कराचार्य** के चारों मठों में **श्रीयन्त्र** का आज भी पहले ही की भाँति नित्य-प्रति पूजन होता है। **कामाख्या, कालीघाट** की **काली, गुह्येश्वरी, विन्ध्याचल, ज्वालामुखी, क्षीर-भवानी, अम्बा माता, मुम्बा देवी, मीनाक्षी, कन्या-कुमारी** का प्रभाव यही सिद्ध करता है कि **शाक्त-धर्म** इस देश का एक जीवित धर्म है। आधुनिकों में **श्रीरामकृष्ण परमहंस** के शिष्य **स्वामी विवेकानन्द** ने अपने सङ्घ का संगठन **कौल-धर्म** के आदर्श पर किया है। **स्वामी रामतीर्थ** और उनके शिष्य **नारायण स्वामी** उच्च कोटि के **कौल** थे और जाने दीजिए, **अयोध्या** और **मथुरा** के **वैष्णवाचार्य** गुप्त रीति से **कौल-धर्म** का ही पालन करते हैं।

महात्मा जी का भाषण समाप्त भी नहीं हो पाया था कि **हलदार महाशय** ने वन्दना पढ़नी शुरू कर दी। जब वन्दना समाप्त हुई और अवसर मिला, तब मैंने **महात्मा जी** से निवेदन किया—महाराज, आपने जो कहा, सो सब ठीक है। परन्तु जनता तो यही जानती है कि **शाक्त-धर्म** का कोई अस्तित्व नहीं है। उनका न अपना कोई प्रगट सङ्गठन है, न कोई सभा है और न उनकी पत्र-पत्रिकाएँ ही निकलती हैं।

महात्मा जी जोश में थे। उन्होंने मुझे रोककर कहा—आप बाजार में रहते हैं और आप **शाक्त-धर्म** को भी बाजारू रूप में देखना चाहते हैं, परन्तु **शाक्त-धर्म** कोई बाजारू वस्तु नहीं है। न पहले कभी वह ऐसा रहा है और न भविष्य में ही ऐसा बन सकेगा। जो उसको ऐसा रूप देने का प्रयत्न करेगा, उसी का पराभव होगा। इस देश की **धार्मिक संस्कृति** का यही रहस्य है—**शाक्त-धर्म**। यह सदैव **गुप्त** रहा है।

मैंने कहा—**गुप्त** कहाँ है? सभी लोग तो उसकी एक-एक बात जानते हैं। यह भी जानते हैं कि अमुक-अमुक व्यक्ति **शाक्त** हैं।

इधर से **गुप्त** बना देने से यह महा-हानि हुई है कि स्वयं **शाक्त** लोग अपने धर्म की मामूली बात तक नहीं जानते।

महात्मा जी ने कुछ रोष के साथ कहा—लोग जानते होंगे। उनके जानने का हम लोगों की दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं है। एक **द्विज** का **गायत्री** का जानना एक बात है और एक म्लेच्छ का पुस्तक से पढ़कर **गायत्री** का जानना दूसरी बात है। लोग जानते होंगे कि अमुक-अमुक व्यक्ति **शाक्त** हैं, परन्तु क्या कभी किसी की हिम्मत पड़ी है कि वह प्रकट रूप से कहे कि अमुक-अमुक व्यक्ति **शाक्त** हैं? यही तो इसका रहस्य है।

इतने ही में **हलदार महाशय** ने अन्तिम वन्दना करने के लिए **महात्मा जी** से कहा और **महात्मा जी** ने उनके प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया। **पूजा** के विसर्जन होने पर परस्पर अभिवादन करने के बाद जब हम लोग घर के बाहर निकले, तब देखा—लोग घाट की ओर स्नान करने को जा रहे हैं। उषा-काल का वह मनोरम प्रभात उस दिन हम

लोगों को सचमुच ही अत्यधिक आनन्द-दायक प्रतीत हुआ।

(२)

दूसरे दिन बाजार में अधिक काम होने के कारण मैं **हलदार महाशय** के घर जाकर उन **महात्मा जी** के दर्शन नहीं कर सका। **महात्मा जी** से मैं पुनः इसलिए मिलना चाहता था कि उस निशा में उनसे जो बातचीत हुई थी, बहुत स्पष्ट नहीं हुई थी। बातचीत के स्वर से वे मुझे बहुज्ञ प्रतीत हुए। मुखाकृति और हाव-भाव से वे स्पष्ट रूप से पक्के **साधक** जान पड़ते थे। सन्ध्या-समय जब मुझे अपने काम-काज से छुट्टी मिली, तब मैं बहुत थक गया था। अतएव जल्दी ही शौचादि से निवृत्त होकर मैंने **सन्ध्या-वन्दन** किया और विश्राम करने के लिए मैं अपने कमरे में घुस गया।

'आज रात को भोजन नहीं करूँगा', यह बात **पण्डित जी** से मैंने पहले ही कह दी थी। इन दिनों घर के सब लोग देश चले गए थे। केवल **पण्डित जी** और नौकर ही रह गए थे। मैं लेटा ही था कि **रघुनाथ** ने आकर कहा कि 'बाहर दो सज्जन आए हैं, आपसे मिलना चाहते हैं।' मैंने पूछा— नाम भी बताया है?

उसने कहा—हाँ, अपने को **हलदार महाशय** कहते हैं।

मैंने कहा—अच्छा, बाहरवाला कमरा खोलो, मैं आता हूँ।

मैं **रघुनाथ** के पीछे-पीछे वैसे ही चल पड़ा। बाहर आकर देखा कि **हलदार महाशय** के साथ वही **महात्मा जी** खड़े हैं। मैंने यथा-विधि उनको प्रणाम किया और **हलदार महाशय** को नमस्कार करते हुए कहा— मेरा अहोभाग्य है कि **महात्मा जी** को अपने साथ लाकर पद-धूलि से मेरी कुटिया को पवित्र किया है।

महात्मा जी ने हँसते हुए कहा—यही बात हम लोग भी कल कह सकते थे, पर भूल गए।

रघुनाथ कमरा खोल चुका था। मैंने कहा—आइए, भीतर पधारिए।

हम तीनों भीतर जाकर कमरे में बैठ गए।

महात्मा जी कुरसी पर बैठते-बैठते बोले—कल मैं यहाँ से जा रहा हूँ। इसलिए सोचा कि आपके भी दर्शन कर लूँ। देखें, अब फिर कब भेंट होती है! **हलदार महाशय** आपके बड़े प्रशंसक हैं। मैं भी देखता हूँ कि आपके हृदय में **जगदम्बा** के प्रति विशेष अनुराग है।

मैंने कहा—महाराज, मैं तो केवल नाम भर जानता हूँ। आप लोगों ने कान पकड़कर जो बता दिया है, उसे नहीं भुलाया। आप इस तरह जो कह रहे हैं, इसे मैं आपकी विशेष अनुकम्पा ही समझता हूँ। आप ऐसा आशीर्वाद दें कि मैं सचमुच **माँ** का सेवक बन सकूँ।

महात्मा जी गम्भीर स्वर में बोले—अब आपको किसी के आशीव.. की जरूरत नहीं है।

मैंने उठकर **महात्मा जी** के चरणों की धूल लेकर मस्तक से लगाई। फिर **हलदार महाशय** की ओर मुँह करके विनम्रता के साथ कहा—यह आपकी बड़ी कृपा होगी, यदि आप कुछ सत्कार करने की आज्ञा दें।

हलदार महाशय ने हँसते हुए कहा—सो तो मैंने घर से चलते ही **महात्मा जी** से कह दिया था कि यदि **शर्मा जी** के यहाँ चल रहे हो, तो जल्दी छूटने नहीं पाओगे। अच्छा, कोई हर्ज नहीं है। आपका सत्कार स्वीकार करना हम लोगों का कर्तव्य है।

मैंने **रघुनाथ** को आवाज दी। वह बाहर ही खड़ा था। मेरी आवाज सुनते ही वह उसी क्षण मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। मैंने उससे कहा—**पण्डित जी** से जाकर कहो कि **पूजा-घर** में ठीक-ठीक **पूजा** की तैयारी करें और जल्दी करें।

वह चुपचाप वहाँ से चला गया। **हलदार महाशय महात्मा जी** का परिचय देते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे। उन्होंने कहा—**शर्मा जी, काली माई** की कृपा से मेरे यहाँ प्रायः **साधक** लोग पधारते रहते हैं। अपने इस लम्बे जीवन में भले-बुरे सभी प्रकार के **साधकों** का सत्सङ्ग किया

है, परन्तु उच्च कोटि के **साधक** बहुत ही कम देखने में आए हैं। ऐसे **साधक,** जो शास्त्रज्ञ भी हों और **साधना** में कुशल भी हों, दिन-दिन कम होते जाते हैं। बहुत दिनों के बाद इन **महात्मा जी** के रूप में उस कोटि के **साधक** के दर्शन हुए हैं। मैं तो अपने को धन्य मानता हूँ।

मैंने कहा—आपका कथन सर्वथा सत्य है। मैं भी ऐसा ही अनुभव कर रहा हूँ।

इस पर **महात्मा जी** बार-बार कुछ ऊँचे स्वर में **'माँ'** का नाम उच्चारण करने लगे। फिर वे धीरे से बोले—भाई, यह सब बे-मतलब की बातें हैं। इनके कहने की क्या जरूरत है? आओ, थोड़ी देर तक बैठकर धर्म की चर्चा की जाय क्योंकि सार वस्तु तो वही है।

उनके इस कथन पर हम दोनों ही लज्जित-से हो गए, परन्तु बातचीत बन्द न हो, इसलिए मैंने **महात्मा जी** से कहा—कल आपने कहा था कि **मथुरा** और **अयोध्या** के **वैष्णवाचार्य** भी **कौल-धर्म** के अनुसार यजन करते हैं, यह बात मेरे गले से नीचे नहीं उतरती है।

हँसते हुए **महात्मा जी** ने कहा—हाँ, आप ठीक कहते हैं। मेरी बात का कोई विश्वास नहीं करेगा, परन्तु मैंने जो कुछ कहा है, सत्य कहा है और व्यक्ति-गत अनुभव से कहा है। **अयोध्या** में भी मैंने उन आचार्यों के साथ बैठकर **कौल-क्रम** से कई बार यजन-भजन किया है, परन्तु वे इस विषय में अति **गुप्त** रहते हैं। तो भी **साधकों** के आगे वे प्रकट हो जाने में सङ्कोच भी नहीं करते। हाँ, **साधक** सचमुच **साधक** होना चाहिए।

मैंने कहा—और आपने कहा था कि **स्वामी विवेकानन्द** ने **कौल-धर्म** के आदर्श पर अपने सङ्घ का सङ्गठन किया है। सो कैसी बात है?

महात्मा जी बोले—सो तो आप आसानी से जान सकते हैं। **रामकृष्ण मिशन** के साधुओं से थोड़ा भी मेल-जोल कर लेने पर कोई भी **साधक** जान जायगा कि उनमें से कितने **कौलाचारी** हैं और यह भी कि उनमें कितने **पूर्णाभिषिक्त** हैं। मैंने इस साधु-मण्डल के साधुओं का भी अच्छा सत्सङ्ग किया है। उनमें बहुत से उच्च कोटि के **साधक** विद्यमान हैं। भाई, सत्सङ्ग करने पर ही **साधकों** के दर्शन होते हैं। फिर **कौलों** के दर्शन तो कठिनाई से ही मिलते हैं। यह सचमुच ही एक अति **गुप्त मार्ग** है।

मैंने कहा—आपने कहा था कि **शाक्त-धर्म** में मूर्ति आदि का कोई स्थान नहीं है, परन्तु देखने में तो यह आता है कि **शाक्त-धर्म** ही **मूर्ति-पूजा** का विशेष रूप से प्रचार करता है।

महात्मा जी बोले—**शर्मा जी, शाक्त-धर्म** से मेरा मतलब था **कौल-धर्म** से। आप नित्य ही अपने पूजन में देखते हैं, हम लोग तो **माँ** की **यन्त्र** में केवल भावना करके ही भजन-पूजन करते हैं, **मूर्ति** आदि की कब कहाँ पूजा करते हैं? फिर हमारे प्राचीन **पीठ-स्थानों** में ही मूर्तियाँ कहाँ हैं? वहाँ तो चिह्न मात्र ही पाए जाते हैं।

हलदार महाशय अभी तक चुपचाप बैठे सुन रहे थे। चौंककर एकाएक उन्होंने कहा—**स्वामी जी,** मैं हाल में पश्चिम गया था। **प्रयागराज** में मैंने **ललिता पीठ** का दर्शन किया। वहाँ तो मुझे **ललिता जी** की शिला-मूर्ति ही के दर्शन हुए।

महात्मा जी ने कहा—आप ठीक कहते हैं। मैंने उस स्थान में कुछ काल तक निवास भी किया है। वहीं मैंने कुछ लोगों को कहते सुना है कि यह **ललिता-पीठ** नहीं है। फिर **ललिता जी** के **भैरव यमुना जी** के पार अति दूर बताए जाते हैं! यह सब देख सुनकर मैंने यह निश्चय किया कि **ललिता-पीठ** यदि **प्रयाग** में है, तो वह **कड़े** में है। वहाँ कोई मूर्ति भी नहीं है और स्थान के **भैरव** भी समीप ही हैं। इसके सिवा उस स्थान की महिमा भी बहुत बढ़ी-चढ़ी है। यह सच है कि वह स्थान **शीतला जी** के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, **कड़े** ही में **ललिता- पीठ** होना चाहिए और **कड़ा प्रयाग-मण्डल** के अन्तर्गत ही है।

मैंने कहा—**स्वामी जी महाराज,** आपने यह तो बहुत ही महत्त्व की बात बतलाई है, परन्तु

आपने जो यह कहा था कि सारे देश में **शाक्त-धर्म** का महत्त्व स्थापित है, साथ ही यह कहते हैं कि **कौलों** का दर्शन पाना दुर्लभ है, इसकी सङ्गति आप कैसे लगाएँगे? मैं तो **कौल-धर्म** को ही **शाक्त-धर्म** मानता हूँ। जो **कौल** नहीं है, वह यदि अपने को **शाक्त** कहता है, तो भूल करता है। मैं तो ऐसा ही समझता हूँ।

महात्मा जी ने बड़े मधुर स्वर में कहा—आप बहुत ठीक समझते हैं, परन्तु **माँ** के प्रेम का भाव आपमें इतना भर गया है कि प्रारम्भ की बातें आप भूल गए हैं। भाई, **कौल** तो अन्तिम दर्जा है। **शाक्त-धर्म** में और भी **आचार** हैं। उनको आप क्यों भुला देते हैं? उन **छः आचारों** के माननेवालों में प्रारम्भ के तीन आचार माननेवाले **कौल** नहीं हो सकते; परन्तु वे **शाक्त** हो सकते हैं।देश में उन्हीं का बाहुल्य है। इन्हीं में से जब जिसकी भावना उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, तब वह **क्रम** से एक **आचार** के बाद दूसरे **आचार** का अधिकारी होता है और अन्त में **कौलत्व** को प्राप्त करता है। आप जैसे सभी भाग्य-शाली नहीं हैं। सौभाग्य से आपको **भैरवी माँ** के रूप में **सद्-गुरु** की प्राप्ति हो गई, जिनके प्रसाद से एक ही झोंके में आपने **कौलत्व** को प्राप्त कर लिया। ऐसे अवसर सबके लिए सुलभ नहीं हैं। **माँ** की विशेष कृपा होने पर तो ऐसा अवसर प्राप्त होता है।

अपना कथन समाप्त कर **महात्मा जी** गम्भीर स्वर में बार-बार **माँ** का नाम उच्चारण करने लगे। ज्यों ही वे चुप हुए, **पण्डित जी** ने कमरे में प्रवेश किया। उन्होंने कहा—**पूजा** का सब सामान ठीक हो गया है। आप चाहे चलकर देख लें।

मैंने कहा—आप ऊपर चलें, हम लोग आते हैं।

इसके बाद मैंने **हलदार महाशय** से कहा—**महाशय जी,** आइए, अब हम लोग ऊपर चलें।

मेरे यह कहने पर **हलदार महाशय** उठ खड़े हुए। **महात्मा जी** भी उठे। अब हम सब लोग ऊपर गए। हाथ-पैर धोकर हमने **पूजा-घर** में प्रवेश किया। सब सामान यथा-स्थान रखा देखकर **महात्मा जी** ने हँसते हुए कहा—**शर्मा जी, हलदार महाशय** जैसा कहते थे, वैसा ही मैंने आपको पाया। आपके **पण्डित जी** भी अच्छे जानकार जान पड़ते हैं। देखो, सब सामान यथा-स्थान रखा है। कहीं भी कोई त्रुटि नहीं है।

महात्मा जी पूजा करने बैठे। उन्होंने संक्षिप्त पूजा की, परन्तु भाव-पूर्ण ढङ्ग से की। प्रसाद ग्रहण करने के उपरान्त मैंने उनका और **हलदार महाशय** का **वीर-पूजन** किया, परन्तु मेरी पूजा उन दोनों महाशयों ने बहुत आग्रह करने पर ही स्वीकार की। मैं उनके साथ घर के बाहर तक आया। तीन-साढ़े तीन का समय रहा होगा। मैंने कहा—ठहरिए, सवारी मँगवा दूँ।

हलदार महाशय बोले—हम लोग पैदल ही जायँगे। इस पर मैंने उन दोनों का समुचित रूप से अभिवादन किया। **महात्मा जी** ने कहा—**शर्मा जी,** आपके सङ्ग से बहुत ही आनन्दित हुआ हूँ। देखें, **माँ** अब यह अवसर कब उपस्थित करती हैं?

मैंने कहा—मुझ सेवक पर आपकी कृपा बनी रहे, यह मेरी प्रार्थना है।

महात्मा जी ने मुझे गले से लगाते हुए गद्गद् स्वर में कहा—आत्मीय होकर ऐसा क्यों कहते हो?

यह कहकर वे विदा हुए। **महात्मा जी** का इन दोनों अवसरों का सत्सङ्ग मैं कभी नहीं भूल सका। यद्यपि उनसे फिर कभी भेंट नहीं हुई, परन्तु उनका प्रभाव मुझ पर आज तक पड़ा हुआ है। सचमुच ही वे एक उच्च-कोटि के **साधक** थे।

* * *

साधक का संवाद

६. नया अनुभव

(१)

लोग यात्रा से घबराते हैं, परन्तु मुझे यात्रा में सुख मिलता है और सो भी लम्बी यात्राओं में। उस दिन **मिश्र जी** ने कहा कि **मैसूर** में चन्दन की लकड़ी की किसी प्रकार व्यवस्था हो जाए, तो उसके तेल निकालने का कारखाना खोला जा सकता है। आखिर में **मैसूर** जाने का विचार पक्का हो गया। मेरे एक **मदरासी** मित्र अपने घर जा रहे थे। उन्हीं के साथ चलने का निश्चय हुआ। ठीक यात्रा के समय एक ऐसी अड़चन आ पड़ी कि **मिश्र जी** का जाना तो असम्भव हो गया और अकेले मुझे ही जाना पड़ा। पहले भी मैं **मदरास** आ-जा चुका हूँ, इससे मुझे उस ओर जाने में जरा भी झिझक नहीं हुई, उल्टा मुझे प्रसन्नता ही हुई। **दक्षिण भारत** मुझे प्रत्येक बार अच्छा लगा है। उस भव्य और विशाल मन्दिरों के देश में आज भी **हिन्दू-धर्म** अपने पूर्ण गौरव के साथ विद्यमान है। फलतः मैं ठीक समय पर अपनी इस सुखद यात्रा के लिए चल पड़ा। स्टेशन पर उन **मदरासी** मित्र से भी भेंट हो गई। एक ही डिब्बे में हम दोनों जा बैठे। गाड़ी ठीक समय पर छूट गई।

कलकत्ते से **मदरास** तक हम बराबर चले ही गए। मार्ग में कहीं नहीं ठहरे। **मदरास** से हम **मैसूर** गए और वहाँ लोगों से मिलकर लकड़ी के सम्बन्ध में बातचीत की। कई दिन की दौड़-धूप करने के बाद पता लगा कि लकड़ी किस भाव पर मिल सकती है। मैंने हिसाब लगाकर देखा कि उस भाव के अनुसार लकड़ी खरीदकर ले जाने पर तेल बहुत मँहगा पड़ेगा और लाभ के स्थान में हानि ही होगी। मैंने सारा विवरण लिखकर **मिश्र जी** को भेज दिया और वहाँ के सुन्दर स्थानों की सैर-सपाटा करके मैं **मदरास** लौट आया।

वहाँ पहुँचने पर मैं अपने उन **मदरासी** सज्जन के ही यहाँ फिर ठहरा। एक-दो दिन वहाँ रहने के बाद मैं **मीनाक्षी** के दर्शन करने के लिए **मदुरा** गया। मेरे मित्र उक्त **मदरासी** सज्जन ने मुझे **मदुरा** के अपने एक मित्र के नाम चिट्ठी लिख दी थी। **मदुरा** पहुँचने पर मैं उनके घर गया। उन्होंने मुझे बड़े आदर से लिया और अपने घर में ही ठहराया।

मदुरा के ये **मदरासी** सज्जन सकुटुम्ब **उत्तर भारत** में रह चुके थे और **हिन्दी** जानते थे। वे ब्राह्मण थे। केवल पति-पत्नी घर में थे। लड़का **मुम्बई** में नौकर था और उसकी पत्नी आदि उसके साथ थे। ब्राह्मण देवता का नाम था— **मुथू स्वामी।**

दूसरे दिन **मुथू स्वामी** के साथ जाकर मैंने **मीनाक्षी जी** के दर्शन किए। उनके मन्दिर और मन्दिर के भीतर उनकी प्रतिमा को देखकर कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो आश्चर्य से चकित न रह जायगा? **दक्षिण भारत** के ये मन्दिर वास्तव में **विश्वकर्मा** के ही बनाए जान पड़ते हैं और यही कारण है कि उनमें जाग्रत् देवताओं के दर्शन मिलते हैं। **माँ** के दर्शन का मुझ पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उस दिन मैं चुपचाप ही रहा। भोजन आदि से जब मैं छुट्टी पा गया, **मुथू स्वामी** मेरे पास आए और बातचीत करने लगे। अन्त में पूछा कि—अब आपका क्या प्रोग्राम है?

मैंने कहा—**शाक्त-धर्म** का यहाँ खासा प्रचार जान पड़ता है। मैं यहाँ के **शाक्तों** से मिलकर बातचीत करना चाहता हूँ।

मुथू स्वामी ने हँसकर कहा—**शाक्त** तो मैं भी हूँ। आप कैसे **शाक्त** से मिलना चाहते हैं? क्या साधु-महात्मा से?

'दोनों से। मैं जानना चाहता हूँ कि यहाँ की **साधना-प्रणाली** कैसी है?'

'यह सब तो मैं ही बता दूँगा। यह पहले ही बता देना चाहता हूँ कि यहाँ **उत्तर-भारत** के **शाक्तों** की **पूजा-प्रणाली** का प्रचार नहीं है। हम लोग **दक्षिण मार्ग** से ही अपने **इष्ट-देवता** का पूजन करते हैं।'

'मैं यही सब देखता हूँ कि आप लोग वह सब किस प्रकार करते हैं। मैंने सुना है कि **स्वामी शङ्कराचार्य** ने **शाक्त-धर्म** का भी सुधार किया है, परन्तु उनका वह **संस्कृत शाक्त-धर्म 'दक्षिण'** में ही प्रचलित हो सका।'

'बौद्धों और **जैनों** के विरोध को शान्त करना था। **शङ्कर** ने **वैदिक धर्म** का परिष्कृत रूप में प्रचार किया है, तो यह काम करके उन्होंने **धर्म** की रक्षा ही की है। **शङ्कर** या उनके पूर्व-वर्ती आचार्यों ने कुछ ऐसी बातें निकाल दी हैं, जिनका लोक में विरोध था। यह उसी सुधार का परिणाम है कि आज **वैदिक धर्म** देश में फैला हुआ है। क्या अपने इस रूप में भी वह आज हमें देखने को मिलता, यदि हम अपने **धर्म** में देश-काल के अनुसार सुधार न करते? वह भी **शाक्त-धर्म** की तरह कुछ पुरातन-पन्थियों के यहाँ छिपा पड़ा होता!'

'तो आप **धर्म** के इस विकृत रूप को श्रेयस्कर समझते हैं?'

'न समझेंगे, तो करेंगे क्या? हम लोगों का मनोभाव ही वैसा हो गया है! इसमें सन्देह नहीं कि **बौद्धों** के लोक-व्यापी प्रभाव को विनष्ट करने में तत्कालीन धर्माचार्यों ने विलक्षण तथा महान् प्रयत्न किया था। उसका अपना एक इतिहास ही अलग है?'

'वह इतिहास कैसा है?'

'इसके लिए संस्कृत-साहित्य के परिष्कृत रूप का बारीकी से अध्ययन करना होगा। कलि-वर्ज्य-प्रकरण की रचना से इसका प्रारम्भ होता है। इस काल में और इस प्रकार लोक-मत के अनुसार **धर्म** का सुधार किया गया। यह सारा महान् कार्य किन लोगों ने किया, इसका कोई पता नहीं। उनका यह कितना महान् त्याग है! अपना नाम तक सामने नहीं आने दिया! और काम इतने महत्त्व का किया कि **धर्म** की रक्षा ही नहीं की, **विरोधी धर्म** को हटाकर तथा उसे प्रभाव रहित कर **वैदिक धर्म** को पूर्व-वत् व्यापक बना दिया! यह कितने महत्त्व की बात है! इसका इतिहास यदि खोज करके लिखा जाय, तो आप जान सकेंगे कि **बौद्धों** के अभ्युदय के समय के हमारे ये धर्माचार्य कितने दूर-दर्शी और कार्य-कुशल थे!'

'तो भी मैं जरूर कहूँगा कि उनका यह समझौते का प्रयत्न **वैदिक धर्म** के लिए घातक ही सिद्ध हुआ है। **वेद** की **संहिताएँ, ब्राह्मण-ग्रन्थ, सूत्र** आदि हिन्दू के जीवन में आज अपना क्या प्रभाव डालते हैं, यह आप भी जानते हैं।'

'आप तो दुराग्रह कर रहे हैं। आपको यह जानना चाहिए कि एक बार को छोड़कर और कभी इस देश के **वैदिकों** ने **धर्म** के क्षेत्र में हठ-धर्मी से काम नहीं लिया और जैसा देश-काल देखा है, उन्होंने उसके अनुसार अपने **धर्म** में काट-छाँट कर ली है। यह इसी समझौते

का परिणाम है कि वह आज भी जीवित है। वह **गायत्री मन्त्र,** जो पहले-पहल **महर्षि विश्वामित्र** को प्राप्त हुआ था, आज भी उसी रूप में सारे देश को ज्ञात और प्राप्त है। यह उनकी महानता का ही बोधक है। मैं आपकी बात मानता हूँ, पर लोक-मत सदैव प्रबल रहा है और जब जिसने उससे टक्कर ली है, उसे नीचा देखना पड़ा है! **शङ्कर 'शाक्त-मत'** अर्थात् **तन्त्र-मत** के महत्त्व को जानते थे। इसी से उन्होंने अपने **मठों** में उसे सबसे अधिक महत्त्व का स्थान दिया, परन्तु दिया **अनुकल्पों** के साथ, विशेषकर इसलिए कि वे संन्यासी थे।'

'परन्तु उससे शास्त्र की उपेक्षा हुई है।'

मुथू स्वामी ने कहा—मैं आपकी बात मानने को तैयार नहीं हूँ। **हिन्दू महात्मा** 'शास्त्र' की अवहेलना कदापि नहीं कर सकते। फिर **आद्य शङ्कराचार्य** कैसे करेंगे? उन्होंने **'वैदिक धर्म'** की पुनः स्थापना की है और **शास्त्रों का गौरव** स्थापित किया है।

मैंने कुछ तेज होकर कहा— यदि **वैदिक धर्म** की पुनः स्थापना हुई है और वह अपने मूल रूप में है, तो पहले की भाँति **यज्ञों में पशु-बलि** क्यों नहीं होती और **मांसादि** का प्रयोग **पितृ-श्राद्धों** में क्यों नहीं किया जाता? आज के **वैदिक धर्म** में उन बातों का प्रचलन क्यों नहीं है, जिनका विरोध करने के लिए **जैन-धर्म** और **बौद्ध-धर्म** का जन्म हुआ था? मैं तो यही कहूँगा कि आज का **वैदिक धर्म** पहले जैसा नहीं है, किन्तु ऐसे परिवर्तित रूप में है कि उसके विरोधी पहले की भाँति उसका विरोध न करें।

'आप तो उलटी ही बात कहेंगे। अरे भाई, हमारे **शास्त्र** में कलि-युग में हिंसा-परक **यज्ञों** तथा **श्राद्धों** का निषेध है।'

'यही तो मैं भी कह रहा हूँ, किन्तु अपने ढङ्ग से कह रहा हूँ। **धर्म** के आचार्यों ने देखा कि इस नए युग में वह सब नहीं चलने पाएगा। उन्होंने उनका कलि-युग के लिए निषेध कर दिया, परन्तु **शाक्त-धर्म** के आचार्यों ने अपने धर्म में परिवर्तन करना नहीं स्वीकार किया और उसे **गोपनीयता** का जामा पहना कर वे जैसा-का-तैसा जारी किए रहे, परन्तु इधर **दक्षिण** में आप लोगों ने उसे भी आधुनिक **वैदिक** रूप दे डाला है। आप लोगों की यह **सपर्या** और **पूजा-अर्चा 'दक्षिणाचार'** के आगे पैर बढ़ाने का साहस कहाँ कर पाती है, यद्यपि उसका अन्तिम रूप **कौलाचार** ही माना गया है? आपके इस **श्रीविद्या** के देश में कहाँ कितने **कौल** हैं, क्या यह बताने की कृपा करेंगे?'

'आपका यह तर्क कुतर्क है। इसका उत्तर मेरे पास नहीं है, परन्तु आज सन्ध्या-समय मैं आपको **नाथ जी** के पास ले चलूँगा। आपका समाधान वे कर देंगे।'

मैंने पूछा—ये **नाथ जी** कौन हैं?

मुथू स्वामी ने कहा—वे एक विरक्त साधु हैं। बड़े भारी विद्वान् हैं। कभी-कभी यहाँ आ जाते हैं। प्रायः भ्रमण किया करते हैं।

मैंने कहा—**धर्म** के सम्बन्ध में मैं वाद-विवाद किसी से नहीं करता। साधु-सन्तों से तो और भी नहीं। यह तो बात चल पड़ी थी, इससे इतनी बातें हो गईं, परन्तु **नाथ जी** के दर्शन जरूर करूँगा।

मुथू स्वामी ने गम्भीर होकर कहा—'यह वाद-विवाद नहीं है, तो क्या है? यह मार्ग रहस्य-पूर्ण है। यह न **ईसाई धर्म** है और न **मुसलमान धर्म** है; जो इसका गली-गली प्रचार हो। **आगम-ग्रन्थों** में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि यह

'गुप्त' रखा जाए, किसी पर इसका रहस्य प्रकट न किया जाए। फिर यह ऐसा है भी नहीं कि सभी कोई इसके अधिकारी हों। यह **'योगिनामप्यगम्यः'** है।' यह कहकर वे चुप हो रहे।

मैंने कहा—आप कहते तो ठीक हैं, लिखा भी वही है, जो आपने कहा है, परन्तु उसका जो अर्थ आपने किया है, उससे मैं सहमत नहीं हूँ। यदि इस तरह इसे **गोपनीय** रखना होता, तो **सदाशिव** ने इसकी इतने विस्तृत रूप में व्याख्या न की होती और न इसका चारों वर्णों के लोगों को ही नहीं, चाण्डालों तक को अधिकारी बनाया होता। फिर उन्होंने इसको **कलि-काल** का **युग-धर्म** कहकर लोक-कल्याण के लिए उपदेश किया है। ऐसी दशा में इसे **गुप्त** रखने का आशय यह है कि जब इस **विद्या** को प्राप्त करो, तब इसे **गुप्त** रखो, उसी भाँति जैसे लोग अपनी धन-दौलत छिपाकर रखते हैं। **गुप्त** रखने का अर्थ यही है कि इसे सबसे अधिक मूल्यवान् समझो। और जो आपने उसे इतना गूढ़ बताया कि योगियों के लिए भी अगम्य है, अर्थात् साधारण लोगों की गति के बाहर की वस्तु है, सो मैं इस उक्ति से भी मत-भेद रखता हूँ। पहले तो यह उक्ति एक विशेष अवस्था की है, दूसरे इसका अर्थ केवल बड़ाई मात्र है। मैं भी जानता हूँ, और आप भी जानते हैं कि कितने ही साधारण लोग, जो **योग** और **वेदान्त** के ज्ञान से सर्वथा कोरे रहे हैं, इस **मार्ग की दीक्षा** लेकर अपने कल्याण-साधन में सफल मनोरथ हुए हैं और हो भी रहे हैं। तब **अगम्यता** का अर्थ **दुर्गमता** वा **गूढ़ता** करना कैसे ठीक होगा?

मुथू स्वामी बोले—मेरे और आपके विचार में बड़ा अन्तर है। अच्छा, यदि आपका ही यह अर्थ ठीक है, तो इसको **गुप्त** रखने तथा इसे **गूढ़** समझने की जो **परम्परा** है, उसके सम्बन्ध में आप क्या कहते हैं?

मैंने कहा—इस **परम्परा** का अर्थ स्पष्ट ही है। विरोधियों का प्रभाव बढ़ जाने पर कभी ऐसा समय आया होगा, जब इस **धर्म** के आचार्यों ने **धर्म** की रक्षा के लिए **गूढ़** बताने और **गुप्त** रखने की चाल डाली होगी। यह तो आप जानते ही हैं कि **वैदिक यज्ञों** का किसी समय कैसा भयानक विरोध हुआ था। यहाँ तक कि वे बन्द ही हो गए। यही नहीं, **वैदिकों** को अपने धार्मिक कृत्यों में लोक-रुचि के अनुसार बड़े-बड़े परिवर्तन करने पड़े।

खीझकर **मुथू स्वामी** ने कहा—आप तो बस उल्टी ही कहेंगे! कहाँ **यज्ञ** बन्द हो गए? आज भी बराबर **यज्ञ** हो रहे हैं। और परिवर्तन कहाँ कैसा हुआ है? यह आपका बहुत अनुचित आक्षेप है। **धर्म** में परिवर्तन कैसा?

मैंने कहा—एक आध **सूत्र-ग्रन्थ** एक बार फिर पढ़िए। आप ही पता लग जायगा कि **वैदिक-धर्म** का हम कितने परिवर्तित रूप में पालन कर रहे हैं! जीवन-सम्बन्धी **संस्कारों** आदि पर भले ही उसकी छाप पड़ती दिखाई दे जाय, पर परमार्थ की साधना में आज **वैदिक धर्म** को कौन पूछता है? और **यज्ञ!** क्या वे **यज्ञ** आज **वैदिक धर्म** के अभिमानी करने का साहस कर सकते हैं, जिनकी निन्दा आज दिन भी होती रहती है? हाँ, हमारे **शाक्त-धर्म** के आचार्यों ने अपने **धर्म** में किसी तरह का फेर-फार करना स्वीकार नहीं किया और वे अपने शास्त्रादेशों पर अटल रहे। **अनुकल्प-विकल्पों** की भावना यद्यपि उसमें भी घुस आई है, परन्तु मूल तत्त्वों का त्याग नहीं ही किया गया। उसने **गुप्त** हो जाना और लोगों की दृष्टि में **गूढ़** बन जाना तो स्वीकार कर लिया, परन्तु अपने अस्तित्व को नहीं मिटने दिया और यह

आज भी अपने असल रूप में विद्यमान है।

क्रुद्ध-सा होकर **मुथू स्वामी** बोले—तो क्या **वैदिक धर्म** का अस्तित्व मिट गया है? हम सब लोग **अवैदिक** हैं? एक **शाक्त** ही अपने **धर्म** के पक्के हैं?

मैंने कहा—मैंने यह कब कहा कि **वैदिक धर्म** का अस्तित्व मिट गया। मैंने तो केवल यही कहा कि लोक में उसकी जिन बातों का विरोध हुआ, उन्हें या तो बन्द कर देना पड़ा या उनमें लोक-रुचि के अनुसार परिवर्तन करना पड़ा है। उदाहरण के लिए **ब्राह्मण-ग्रन्थों** तथा **गृह्य-सूत्रों** में वर्णित बहुत से **यज्ञ** बन्द हो गए और **पितृ-श्राद्ध** में परिवर्तन करना पड़ा। बाकी बातें जारी रहीं तथा नई-नई आती गईं। आज का **वैदिक धर्म** ऐसा ही परिवर्तित तथा संशोधित **धर्म** है, परन्तु **शाक्त** जैसे पहले थे, वैसे आज भी हैं। हाँ, आपके प्रान्त में **अनुकल्पों** ने जरूर महत्त्व प्राप्त कर लिया है, परन्तु अन्य प्रान्तों में वह अपने असल स्वरूप में ही विद्यमान है।

'फिर वही आक्षेप! **अनुकल्पों** का तन्त्र में विधान किया गया है और वह भी **ब्राह्मणों** के लिए। हमारे प्रान्त में **शाक्त-धर्म 'आगमों'** का ठीक-ठीक अनुसरण करता है। **दीक्षा, अभिषेक** आदि सभी सविधि किए जाते हैं। **उपासना** में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं होती।'

मैंने कहा—मैं आक्षेप नहीं करता हूँ। जो बात है, वही कहता हूँ। **आगम** मैंने भी देखे हैं। **अनुकल्प 'अनुकल्प'** ही हैं और **मूल-तत्त्व 'मूल-तत्त्व'** ही हैं। **मूल-तत्त्व** की अप्राप्ति पर ही **अनुकल्प** का विधान किया गया है, **मूल-तत्त्व** को स्थानच्युत करने को नहीं। आपके प्रान्त में उसने **मूल-तत्त्वों** को उनके अधिकार से वञ्चित कर दिया है, परन्तु अन्य प्रान्तों में वह अपने स्थान पर ही रहा और आज भी है। और उनके **धर्म** के ऐसे आग्रह को इस प्रान्त के **शाक्त** अनुचित समझते हैं!

मुथू स्वामी ने कुछ तीखे स्वर में कहा—हम लोग उसे **धर्म** का आग्रह नहीं, दुराग्रह समझते हैं। जब शास्त्र-निर्दिष्ट **मूल-तत्त्व** अलभ्य हैं, तब **अनुकल्प** का आश्रय लेना पड़ रहा है। अन्य प्रान्तों में जो **मूल-तत्त्व** ग्रहण किए जाते हैं, क्या आप कह सकते हैं कि वे शास्त्रानुसार हैं?

इस बातचीत को मैंने बन्द कर देना ही उचित समझा। मैंने कहा—हम दोनों के दृष्टि-कोण में भारी भेद है, परन्तु यह कम लाभ की बात नहीं हुई कि हम दोनों ने एक दूसरे को जान लिया। अच्छा! **नाथ जी** के पास कब चलेंगे?

'सन्ध्या-समय चलूँगा'—यह कहकर वे घर के भीतर चले गए।

सन्ध्या-समय मैं **मुथू स्वामी** के साथ **नाथ जी** के दर्शन करने गया। वे शहर के बाहर श्मशान में मिले। एक छोटी-सी गन्दी टेकरी थी। जहाँ-तहाँ दो-एक बेल के वृक्ष थे। उन्हीं में से एक पेड़ के नीचे वे बैठे थे। देह भर में भस्म लगी हुई थी। सफेद जटाएँ और लम्बी दाढ़ी से जान पड़ता था कि वे सत्तर के होंगे, पर देह से वे सबल जान पड़ते थे। एक लँगोटी लगाए थे। उसके सिवा उनके पास और कुछ नहीं था। हम दोनों उन्हें प्रणाम कर वहीं जमीन पर बैठ गए।

उन्होंने हमारे अभिवादन का कुछ भी उत्तर न दिया। जैसे-के-तैसे ही चुपचाप बैठे रहे। कुछ देर के बाद जब बोले। तब **तमिल** में, जिसे मैं नहीं समझ सका। **मुथू स्वामी** से उनकी बातचीत होती रही। अन्त में उन्होंने मेरी ओर मुँह किया और मुझसे हिन्दी में बोले। उन्होंने कहा—मैं **काशी-प्रयाग** में वर्षों रहा हूँ और मुझे **उत्तर भारत**

बहुत प्रिय है। **मुथू स्वामी** ने बताया कि आपको यहाँ के **शाक्तों** की **साधना** के सम्बन्ध में कुछ कहना है, यहाँ तक कि आप उनकी **साधना** को विकृत मानते हैं। ऐसी धारणा तो ठीक नहीं है। **उपासना** में देश, काल और सामर्थ्य के भी अनुसार सदा भेद होता रहा है।

मैंने विनम्रता के साथ निवेदन किया—महाराज, आप जो कहते हैं, यथार्थ है। पर मैंने कुछ दूसरी ही बात कही थी।

'आपने कहा है कि यहाँ **अनुकल्पों** का महत्त्व है और वह ठीक नहीं है, परन्तु उनका महत्त्व केवल उन्हीं के लिए है, जो वहीं तक चल सकते हैं। यहाँ ऐसे साधकों का क्या काम है, जो **द्रव्यों** को मूल रूप में ही ग्रहण करते हैं। **शङ्कर स्वामी** की इस व्यवस्था का ही यह शुभ परिणाम हुआ है कि **जगदम्बा** की पूजा-अर्चा यहाँ सविधान बराबर होती रहती है। यहाँ **अधिकारी-भेद** का पूरा ध्यान रखा गया है, अन्यथा **उत्तर भारत** की भाँति यहाँ से भी **शाक्त-धर्म** का उन्मूलन हो गया होता। यदि **अनुकल्पों** का आश्रय न लिया गया होता, तो आज आपको यहाँ लोगों के माथों पर **लाल बिन्दी** लगी हुई न दिखती। आपके यहाँ **मूल-द्रव्यों** का आग्रह किया गया। फल क्या हुआ?'

इतने में **मुथू स्वामी** कुछ कह पड़े, और उनसे **महात्मा जी** की **तमिल** में बातचीत होने लगी, परन्तु उनका शीघ्र ही समाधान कर **महात्मा जी** ने फिर मेरी ओर मुँह किया।

मैंने हाथ जोड़कर कहा—आपका मैं काफी समय ले चुका हूँ।

'नहीं, नहीं, यह भी कोई बात है! फिर आप तो **धर्म** की ही बात करते हैं।'

महात्मा जी के प्रोत्साहन से मैंने कहा—महाराज, जब आपकी आज्ञा है, तब एक और प्रार्थना है। हमारे **शाक्त-धर्म** में किस बात की प्रधानता है? **ज्ञान** की या **भक्ति** की या **योग** की, किसकी है?

इस बार **महात्मा जी** ठहाका मारकर हँस पड़े। जब हँसना बन्द हुआ, तब आँसू पोंछकर बोले—

'**शाक्त-धर्म ज्ञान-मार्ग-प्रधान** है या **भक्ति-मार्ग-प्रधान** या **योग-मार्ग-प्रधान** है, यह सब मैं क्या जानूँ! न मैं **ज्ञानी** हूँ, न **भक्त** हूँ और न **योगी** हूँ। मैं तो केवल **माई-माई** भर कहना जानता हूँ।' यह कहकर **महात्मा जी** चुप हो गए।

मैंने समझा कि प्रश्न से **महात्मा जी** कदाचित् असन्तुष्ट हो गए हैं, क्योंकि उस समय उनकी वैसी ही भाव-भङ्गी हो गई थी, अतएव मैंने अति विनय-पूर्वक कहा—**महाराज,** मैंने जिज्ञासा के भाव से ही यह प्रश्न किया है। इसके सिवा और कोई बात नहीं।

महात्मा जी इस पर फिर खिलखिलाकर हँस पड़े। उन्होंने कहा—**भैया,** मैं सच ही कहता हूँ कि **माई-माई** भर कहना जानता हूँ। जब से **मा-मा** कहने की **दीक्षा** मिली है, उन्हीं का नाम लिया करता हूँ ताकि इस लोक और पर-लोक में भी वह बराबर रक्षा करती रहे। मेरी यही चेष्टा रहती है कि **मा** को एक क्षण के लिए भी न भूलूँ। **गुरुदेव** ने यही आदेश किया था और जो **पूजा-अर्चा** बताई है, उसका भी यही उद्देश्य है कि हर समय **मा** का ही होकर रहूँ। इसे चाहे **ज्ञान-मार्ग** कहो, चाहे **भक्ति-मार्ग** और चाहे **योग-मार्ग,** पर मैं यह सब नहीं जानता। कह सकता हूँ तो केवल इतना ही कि यह **मातृ-मार्ग**

है और इसका आश्रय करनेवाला **पुत्र** बनकर **मा** को पाता है।

महात्मा जी ने यह सब एक साँस में कह डाला, जैसे कोई बच्चा अपना पाठ सुनाता है! उनकी वह **बाल-मुद्रा** देखकर मैं चकित रह गया। मैंने यही कहा—**महात्मा जी,** बातचीत होने पर ऐसे प्रश्न उठते हैं। उन पर शास्त्रीय दृष्टि-कोण से विचार होता है, अन्यथा ऐसी ढिठाई न करता।

'मैंने **तन्त्र-ग्रन्थों** का कहाँ अध्ययन किया है, जो अधिकार-पूर्वक आपकी बातों का उत्तर दूँ?'

'इतने बड़े **कुलावधूत** जब इस प्रकार कहते हैं, तब हमारे सरीखे लोगों का कौन समाधान करेगा?'

महात्मा जी थोड़ी देर तक ध्यानस्थ रहे। उसके बाद गम्भीर स्वर में कहने लगे—ऐसे शास्त्रीय पचड़ों में हम लोग नहीं पड़ते हैं। हमें तो अपनी **साधना** से मतलब रहता है। **पद्धति** के अनुसार **माई-माई** कहते हुए और सुख-दुःख भोगते हुए जीवन को धीरता-पूर्वक व्यतीत करते रहते हैं। हमें न तो **ज्ञान** से मतलब है, न **भक्ति** से और न **योग** से। **माई** के दरबार में पुत्रों को **ज्ञानी, भक्त** या **योगी** बनने की जरूरत ही कहाँ? ऐसी दशा में मैं तुम्हारे प्रश्न का कैसे समाधान करूँ?

मैंने कहा—मैं आपकी बात को मानता हूँ, परन्तु आप तो तपे हुए **साधक** हैं, अपने अनुभव के बल पर कुछ-न-कुछ तो कह ही सकते हैं।

'सो तो मैंने बता दिया है, परन्तु आपको सन्तोष नहीं हुआ। अब मैं यह कहूँगा कि **शाक्त-धर्म** में **ज्ञान, भक्ति** और **योग** आदि के चरम रूप का दर्शन मिलता है, परन्तु ऐसी भारी बात मैं कैसे कह सकता हूँ? न तो इस तरह का अनुभव हुआ है और न ऐसा कहने का अभ्यास रहा है।'

'परन्तु **महाराज,** आप जैसे महात्माओं को कहते सुना है कि **तन्त्र** अनेक विद्याओं का भण्डार है और उसमें **ज्ञान, वैराग्य, योग, भक्ति** आदि सभी विषयों का निरूपण किया गया है।'

'तो मैंने ही कब कहा कि **तन्त्रों** में इन विषयों का जिक्र नहीं है? परन्तु आप तो **शाक्त-धर्म** की बातें कर रहे थे।'

'**शाक्त-धर्म** और **तन्त्र-धर्म** एक वस्तु के दो नाम भर हैं, उनमें भेद ही कहाँ है?'

'मैं ऐसा नहीं समझता। मैं तो यह कहूँगा कि **तन्त्रों** में अन्य नाना विषयों का जहाँ निरूपण है, वहाँ **शाक्त-धर्म** उसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है और उस **शाक्त-धर्म** में केवल **माई-माई** की चर्चा है।'

काफी देर हो गई थी। **मुथू स्वामी** बार-बार अँगड़ाई ले रहे थे। मैंने **महात्मा जी** से कहा—अब आज्ञा दीजिए। बहुत देर हो गई है।

महात्मा जी ने कहा—अच्छा, अच्छा अब कब भेंट होगी? आपसे तो बातें करने को बहुत जी चाहता है।

मैंने कहा—'**महाराज,** अष्टमी तक अभी यहाँ हूँ। सेवा में फिर हाजिर होऊँगा।' यह कहकर मैंने उनको प्रणाम किया और हम दोनों वहाँ से चले आए।

* * *

साधक का संवाद

६. नया अनुभव

(२)

मार्ग में मैंने कहा—भाई **मुथू,** खूब दर्शन कराए। **नाथजी** तो बड़े जानकार हैं। क्या ये इसी स्थान में रहते हैं, खाते-पीते कहाँ हैं?

मुथूस्वामी ने कहा—इनको जानकार कहते हो! बड़े भारी **महात्मा** हैं, किसी से बात तक नहीं करते। अपना भाग्य सराहो, जो इतनी और इतनी देर तक बातचीत की। रहते क्या हैं, इसी मैदान में रात-दिन घूमा करते हैं। जब जहाँ चाहते हैं, बैठ जाते हैं। पड़ भी रहते हैं। खाने की इच्छा होती है, शहर चले जाते हैं। जिसके यहाँ जा खड़े होते हैं, वह अपना बड़ा भाग्य मानता है और इनको भोजन करा देता है। सारा शहर इनका आदर करता है।

'जब ऐसी बात है तब तो आप लोगों की इनके पास भीड़ लगी रहनी चाहिए।' मैंने बीच में टोक दिया।

'प्रारम्भ में लगा करती थी। परन्तु ये लोगों को इकट्ठा होते देखकर उठ जाते और पास के नाले में जाकर गन्दी जगह में घूमने लगते। यह देखकर लोगों ने आना-जाना छोड़ दिया। तो भी कुछ-न-कुछ लोग आते ही रहते हैं।'

'तब तो **विलक्षण महात्मा** हैं! यहाँ कैसे रम गए और आप पर इनकी इतनी कृपा क्यों है?'

'विलक्षण नहीं, **सिद्ध पुरुष** हैं। यहाँ साल में दो बार आते हैं और प्रति बार महीना दो महीना रहते हैं। अधिकतर **कुमारिका-क्षेत्र** में रहते हैं। उन्हीं का इष्ट इनको है। प्रारम्भ में जब ये यहाँ आए थे, मेरे पिता ने इनका बड़ा सत्कार किया था, उसी से मुझ पर भी कृपा करते हैं।'

मैंने कहा—भाई, कल फिर मैं **नाथजी** के दर्शन करना चाहता हूँ।

'अच्छा, परन्तु कल मैं अपने एक मित्र को देखने जाऊँगा। वे बहुत बीमार हैं। वहाँ से लौटने पर ही आ सकूँगा।'

'वही सही, पर कब तक लौट सकोगे? हम लोगों के यहाँ आने के लिए यही समय ठीक होगा।'

'भोजन करके १०-११ बजे तक आ जाऊँगा। तीन बजे तक जरूर लौट आने का प्रयत्न करूँगा।'

'प्रयत्न करोगे?'

'और फिर क्या? बीमार के पास जा रहा हूँ। कोई भी अड़चन पड़ जा सकती है, यद्यपि वैसी सम्भावना नहीं है।'

तब हम दोनों उन्हीं रोगी महोदय के सम्बन्ध में बातचीत करते घर पहुँच गए।

मुथूस्वामी आखिर समय पर नहीं लौट सके। अधिक प्रतीक्षा करना मैंने बेकार समझा। मार्ग से परिचित था ही। अतएव अकेला ही चल पड़ा।

आश्रम—मैं उसे **आश्रम** ही कहूँगा, के पास पहुँचकर देखा कि **नाथजी** अपने भ्रमण में प्रवृत्त हैं। मुझे आता देखकर वे अपने उन्हीं बेल के

पेड़ों के नीचे आ गए। समीप पहुँचकर मैंने बड़े आदर के साथ उनका अभिवादन किया और चुपचाप खड़ा रहा। **नाथजी** मधुर ढङ्ग से मुस्कराते हुए थोड़ी देर तक मेरी ओर देखते रहे। फिर कहा—अच्छा बैठो। **मुथूस्वामी** नहीं आए?

यह कहकर वे पास ही अपने बेढंगे चबूतरे पर बैठ गए। उनका वह चबूतरा क्या, जरा-सी ऊँची जगह थी। मैंने वहीं उनके सामने बैठते हुए कहा—महाराज, आज वे अपने एक बीमार मित्र को देखने चले गए हैं। जब नियत समय पर नहीं लौटे, मैं अकेला ही चला आया।

'दक्षिण आपको कैसा लगा?

'महाराज, मुझे तो उतना देखने का मौका नहीं मिला, परन्तु जितना देखा है, बहुत अच्छा लगा है। हिन्दू का वास्तविक जीवन यहाँ ही दिखाई देता है। परन्तु यह बात मैं दुनिया के दृष्टि-कोण से कहता हूँ, अपने दृष्टि-कोण से नहीं।'

नाथजी ने मुस्कुराते हुए पूछा—क्या आप दुनिया से बाहर हैं? आपके दृष्टि-कोण की क्या विशेषता है?

'महाराज, मेरा दृष्टि-कोण बहुत संकुचित है। मेरी हिन्दू-जीवन की कल्पना बिलकुल भिन्न है।'

नाथजी जोर से हँस पड़े। उन्होंने कहा—अच्छा, अच्छा। आपका हिन्दू कुलीन है। परन्तु भाई, कुलीनों का मेरा जो अनुभव है, वह शायद आपको रुचिकर न हो।

'महाराज, रुचिकर क्यों न होगा? मैं तो आपका उपदेश ही सुनने आया हूँ। आपका वह कैसा अनुभव है?'

नाथजी ने कहा—प्रारम्भ में आपकी ही भाँति मैं भी सिद्धों की बहुत खोज में रहा। मैंने खूब देशाटन किया। आपके उत्तर भारत में मैं वर्षों रहा हूँ। उस समय जहाँ अन्य धर्मों के साधु-सन्तों के दर्शन किए, वहाँ शाक्त महात्माओं के भी दर्शन हुए। **शाक्त अवधूतों** में धर्म के प्रति मैंने गहरी निष्ठा देखी है। यदि उनमें एक बात न होती तो और भी अच्छा होता।

'वह कौन-सी बात है? क्या मैं जान सकता हूँ?'

'वह है बहुत बातें करना और बहुत बातें करने में झूठ कह जाने से विरला ही बच पाता है। किसी भी साधक के लिए **सत्य की निष्ठा** अति आवश्यक है और **शाक्त-साधकों** के लिए तो वह और भी अधिक।'

'उनके लिए वह अधिक क्यों आवश्यक है?'

'इसलिए कि **शाक्त** तो **देव बनकर देवता की आराधना** करते हैं। दास आदि भावों से वे **इष्ट की साधना** नहीं करते। **'शिवोऽहं'** की धारणा में असत्य को स्थान कहाँ हो सकता है? मैंने देखा है कि मिथ्यालाप के कारण कितने ही **शाक्त अवधूत** अन्त में यहाँ तक गिर गए कि फिर कहीं के न रहे।'

मैंने कहा—**महाराज,** आपका कथन सर्वथा ठीक है। मेरा ख्याल इस ओर कभी गया ही नहीं।

'जाना भी न चाहिए। यह तो प्रपञ्च है। प्रसङ्ग-वश ऐसा कह दिया, अन्यथा कोई आवश्यकता न थी और क्या आप **अभिषिक्त** हैं? **साधना का क्रम** क्या है?'

'हाँ महाराज, **गुरुदेव की पादुका** पाने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। **अन्तर्याग** तक करता हूँ। **बाह्य-पूजा** में **जप** और **स्तव-पाठ** करता हूँ।'

तब तो खूब करते हो। **न्यास** कितने करते हो? **षोढा** भी करते हो?

'पाँच मातृका-न्यास भर करता हूँ। **षोढा** आदि नहीं कर पाता हूँ। समय का बड़ा अभाव रहता है। व्यापारी जो ठहरा।'

'तभी तो **भोग** और **मोक्ष** दोनों को ही सुलभ कर लिया है।' यह कहकर **नाथजी** ने हँस दिया।

'परन्तु महाराज, यह **भोग** और **मोक्ष** दोनों के एक साथ मिलने की बात समझ में नहीं आती है।'

'यह तो स्पष्ट है। **शाक्त साधक** इस लोक के सुखों का उपभोग करता है और अपने को मुक्त समझता है।'

'यही तो समझ में नहीं आता है। **भोग** ही तो बन्धन है।'

'दूसरे ऐसा कहें तो ठीक भी है। परन्तु आप तो **साधक** हैं। आप यह क्यों कहते हैं?'

मैं चकित होकर उनकी ओर देखता रह गया और कोई बात कह नहीं सका।

उन्होंने हँसकर कहा—**शाक्त** अपनी क्षण-भंगुर देह को देवता के स्वरूप में परिणत करने का नित्य ही अभ्यास करता रहता है। **प्रातः-काल की अर्चना** में वह **मूलाधार-चक्र** से **ब्रह्म-रन्ध्र** तक **'ब्रह्म-विद्या' की प्रभा** से अपने को व्याप्त समझता है और इस प्रकार उपास्य और उपासक के जिस अभेद-भाव को वह जागने के बाद ही हृदयङ्गम करता है, उसको उसे पुनः निद्रागत होने तक बराबर बनाए रखना पड़ता है। ऐसा भाव **भोग** और **मोक्ष**-भाव से किस प्रकार हीन माना जा सकता है? इस पर कम-से-कम साधक-जन तो शङ्का-शील नहीं हो सकते।

मैं **नाथजी** को चुपचाप देखता ही रह गया। **नाथजी** अपनी बात कहते रहे—**शाक्त-धर्म** की यही तो विशेषता है। वह अपने साधक को उसे जीवन में ही **देवता का रूप** प्रदान कर देता है। इसी से **भोग** और **मोक्ष** उसके **'करस्थ'** होता है। अन्यत्र तो इस **'परमा स्थिति'** की बात तक नहीं है।

मैंने कहा—परन्तु यह बात तो बुद्धि में धँसती नहीं है।

'तो आप **बुद्धिवादी** भी हैं। मैं यह नहीं समझता था।'—यह कहकर **नाथजी** चुप हो रहे।

मैंने कहा—**बुद्धिवादी** होना तो बुरा नहीं है।

'साधना के क्षेत्र में उसकी क्या जरूरत है? **यास्क** ने सबसे पहले इस देश में **बुद्धिवाद** का शङ्ख फूँका था। तब से आज तक यहाँ **बुद्धिवाद** का झण्डा गड़ा हुआ है और कोई किसी की नहीं सुन रहा है।'

यह बेमतलब की बात मेरी समझ में नहीं आई और मैंने पूछा—**महाराज,** मैं आपका आशय समझ नहीं सका।

नाथजी ने गम्भीर होकर कहा—**यास्क** ने लिखा है कि 'अब ऋषियों का अभाव हो गया है, अतएव **तर्क** अर्थात् **बुद्धि** को ही **ऋषि** मानकर उसके अनुसार व्यवहार करना चाहिए।' यह कहकर **यास्क** ने ऋषि क्या एक महर्षि का काम कर डाला। फिर **तर्क-देवता** की वह बढ़ती हुई कि ईश्वर तक का बहिष्कार हो गया। यह सब आप **बौद्ध-काल का इतिहास** पढ़कर जान सकते हैं।

"तो क्या आप **बुद्धिवाद** को बुरा समझते हैं?" मैंने चकित होकर प्रश्न किया।

नाथजी ने उसी गम्भीरता से कहा—वहाँ के लिए, जहाँ उसकी गति नहीं। वह ससीम है तब वह असीम की बात क्या जाने? यह उसी के अतिरेक का परिणाम है कि हमने **परमात्मा के स्थान पर मनुष्य की प्रतिष्ठा** की है, अर्थात् **ईश्वर को छोड़कर मनुष्य की पूजा** करने लगे हैं।

मैंने विकल-सा होकर कहा—आखिर आपका क्या मतलब है? यह कैसे मानूँ कि **बुद्धिवाद** का यह पतन होगा।

''यह तो प्रत्यक्ष है। **यास्क** ने **'बुद्धिवाद'** को महत्व दिया कि लोग ले उड़े। चट घोषणा हो गई कि **वेद**— धूर्तों की रचना है, **यज्ञादि**— स्वार्थी ब्राह्मणों की सृष्टि है! एक-एक बात का प्रमाण माँगा जाने लगा! यहाँ तक बात बढ़ गई कि तर्क-शास्त्र का एक नया साहित्य ही हो गया। लोगों को बाल की खाल निकालने का ऐसा व्यसन हो गया कि उसके आगे सब कुछ भूल बैठे, यहाँ तक कि दूसरों ने आकर देश पर अधिकार कर लिया। सदियाँ बीत गईं और हम आज भी उसी व्यसन के शिकार हैं!''

नाथ जी आवेश में आ गए थे, अतएव मैंने बीच में टोकना उचित नहीं समझा, अपनी बात कहकर जब वे चुप हो रहे तब मैंने विनम्रता से कहा—आप किस वाद को महत्व देते हैं?

''वही पुराना **'कर्मवाद'**, जिसे आजकल के लोग अन्ध-विश्वास कहकर अपने **बुद्धिवादी** होने का गर्व प्रकट करते हैं?''

मैंने कहा—तो क्या महाराज, योरप की इस २०वीं सदी में आपका वह वाद चल सकेगा?

नाथजी ने कहा—बीसवीं सदी का महत्व **बुद्धिवादी** ही मानते हैं। **कर्मवाद** में उसको क्या महत्व मिलेगा? दूर जाने की जरूरत नहीं। अपने पड़ोसी मुसलमानों को देखो, जो अरबी न जानते हुए भी **अरबी का कुरानशरीफ** पढ़ना अपना एक-मात्र कर्तव्य समझते हैं। उनकी तो अपने धर्म के प्रति इतनी गहरी निष्ठा है कि दूसरे धर्म की बात तक सुनना पसन्द नहीं करते। बीसवीं सदीवाले इसे जहालत कहेंगे, पर उस असीम के ज्ञान का पहला पाठ यहीं से प्रारम्भ होता है।

परन्तु मैं इस तरह की चर्चा के लिए **नाथजी** के पास नहीं गया था, अतएव मैंने हाथ जोड़कर कहा—महाराज, आपका कथन यथार्थ है, परन्तु उपाय क्या है? यह परिस्थिति न होती तो हमारा **शाक्त-धर्म** आज इस प्रकार दबा हुआ न होता।

'ठीक है। **शाक्तों** के लिए और क्या उपाय था? या तो दूसरों की भाँति छोड़ ही बैठते या फिर उसे भीतर-ही-भीतर हृदय से लगाए रहते। यद्यपि लाखों छोड़ ही बैठे, तो भी हजारों उसे आज भी गले से लगाए हुए हैं। **बुद्धिवाद** का उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। परन्तु दबसट में पड़ जाने से उसकी वह तेजस्विता नहीं रह गई है। दुःख की बात है, उसके अनुयायियों का उसकी इस दीन दशा की ओर ध्यान भी नहीं है।'

समय काफी हो गया था और सन्ध्या हो आई थी, अतएव मैंने कहा—**महाराज, मदुरा** के ये दो दिन कभी न भूल सकूँगा। मेरा आपके इस **सत्सङ्ग** से बड़ा कल्याण हुआ है। कल सबेरे की गाड़ी से चला जाऊँगा। मैं आपका **आशीर्वाद** चाहता हूँ।

नाथजी धीरे-धीरे मुस्कुराए। उन्होंने कहा—'तो आप कल चले जाएँगे। आप तो माँ के परम भक्त हैं। आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।' यह कहकर **नाथजी** उठ खड़े हुए।

'यही मेरा बड़ा सौभाग्य है।' मैंने कहा और **नाथजी** को प्रणाम कर वहाँ से चला आया।

साधक का संवाद

९. नया अनुभव

(३)

मैं अपने निश्चय को बदलता कम हूँ, परन्तु उस दिन की गाड़ी मैंने जान-बूझकर ही छोड़ दी। गाड़ी का समय हो जाने के बाद मैं थोड़ी देर तक इस बात पर सोचता भी रहा कि मैंने ऐसा क्यों किया, परन्तु किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सका। मुझे कुछ क्षोभ भी हुआ। अन्त में मैंने अपना कमरा बन्द किया और फिर **मीनाक्षीजी** के मन्दिर की ओर चल पड़ा। मैंने सोचा 'चलो आज का दिन फिर **मीनाक्षी माँ** के दर्शन करते हुए बिताया जाए।'

मदुरा का **मीनाक्षी भवानी का मन्दिर** इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि भारत में **शाक्त-धर्म** का कितना महत्व स्थापित हुआ है। यह **दुर्गाकार दीर्घ-काय भवानी का मन्दिर** अपनी विशालता ही के लिए विख्यात नहीं है, किन्तु अपने में एक विशेष शिल्प-कला भी रखता है, जो अपने ढङ्ग की अप्रतिम है।

परन्तु मैं कला-विशेषज्ञ नहीं। यह नहीं कि कला की कोई सुन्दर वस्तु मुझे अच्छी न लगती हो। यह जरूर है कि मैं उनकी बारीकियों को आँक नहीं पाता। ऐसी दशा में **मीनाक्षीजी** के भव्य देवोपम मन्दिर की कला के सम्बन्ध में मेरा यहाँ कुछ कहना मेरे लिए धृष्टता की पराकाष्ठा होगी। मैंने तो उस मन्दिर के भीतर प्रतिष्ठित **भवानी की प्रतिमा** और उसके मन्दिर में कोई भेद नहीं देखा। आज भी जब मन्दिर के प्राङ्गण में पहुँचा, तो उसके एकान्त स्थान पर बैठकर मैं वहीं से मन्दिर का दर्शन करता रहा और ध्यानस्थ होकर उसे घण्टों देखता ही रह गया और यदि पीछे से आकर कोई मेरे कन्धे को स्पर्श न कर लेता तो कदाचित् मैं न मालूम कब तक उस मन-मोहक, आकर्षक और अत्यन्त पवित्र प्रतिमा-स्वरूप मन्दिर का ही दर्शन करता रहता। कन्धे पर किसी के रूक्ष हाथ का स्पर्श होते ही मैं चौंक पड़ा और घूमकर देखा, **नाथजी** खड़े थे। मैंने उठकर प्रणाम किया। **नाथजी** ने हँसकर कहा—यह **वीर की आराधना** नहीं! क्या **वीराचार** छोड़कर **योगाचारी** बनना चाहते हो?

मैंने अति विनम्रता के साथ कहा—महाराज! मैं तो अपने को किसी आचार का अधिकारी नहीं समझता।

'क्या **पूर्णाभिषिक्त** इसी तरह कहेगा? वह तो सत्य-निष्ठ होता है। शास्त्र कहता है— **'पशु-जन-विमुखोऽहं भैरवीमाश्रितोऽहं, गुरु-चरण-रतोऽहं भैरवोऽहं शिवोऽहं।'**

मैं चुप रहा। इस पर मैं कह ही क्या सकता था! **नाथजी** फिर बोले—आप तो कहते थे कि मैं आज की गाड़ी से जरूर चला जाऊँगा। क्या बात हुई कि नहीं जा सके?

मैंने निवेदन किया—मैं स्वयं नहीं जान सका कि मैंने अपना निश्चय क्यों बदल दिया। अब तो मैं यही कहूँगा कि आपके दर्शनों का

लाभ मुझे फिर बदा था।

नाथजी हँस पड़े और कहा—तो चलो, फिर लाभ ही उठा लो।

'कहाँ चलूँ?'

'मेरे साथ आओ।' यह कहकर **नाथजी गोपुर** की ओर चल पड़े। मैं भी उनके पीछे हो लिया। मुख्य द्वार को पार करने के बाद जब **नाथजी** एक ओर को मुड़े, तब मैंने कहा—**नाथजी,** इधर कहाँ जा रहे हैं? क्या इधर से भी आपके स्थान को मार्ग है?

'नहीं, मैं स्थान नहीं जा रहा हूँ। मैं यहाँ के एक **धर्म-निष्ठ ब्राह्मण** के यहाँ जा रहा हूँ। आपकी उनसे भेंट कराऊँगा। वे इस नगर के सर्व-श्रेष्ठ विद्वानों में से हैं। साथ ही बड़े **नैष्ठिक ब्राह्मण** हैं।'

उनकी यह बात सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई और मन में सोचा 'यह **सत्सङ्ग** भी बुरा नहीं होगा।' मार्ग में और कोई बातचीत नहीं हुई। कुछ देर के ही बाद हम गन्तव्य स्थान पर पहुँच गए। **नाथजी** को देखते ही गृह-स्वामी ने आगे आकर उनकी अभ्यर्थना की और उनको सादर प्रणाम किया। **स्वामी जी** ने वहीं की लोक-भाषा में कदाचित् मेरा परिचय उनको दिया क्योंकि उन सज्जन ने मुझे नमस्कार करते हुए संस्कृत में मेरा कुशल-मङ्गल पूछा और मेरे वहाँ उपस्थित होने पर अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की। मैंने भी टूटी-फूटी संस्कृत में नमस्कार करते हुए अपनी प्रसन्नता प्रकट की। हम दोनों को ले जाकर उन्होंने अपने कमरे में सादर बिठाया। वहाँ पहुँचने पर उन सज्जन ने मुझसे तरह-तरह के प्रश्न किए। जैसे बना उनके प्रश्नों का उत्तर दिया। उनके प्रश्न **कुलाचार** के सम्बन्ध में थे। विशेष रूप से उन्होंने यह जानना चाहा कि उत्तर भारत में **कुल-धर्म** की क्या अवस्था है। मैंने उनसे केवल अपने अनुभव की ही बातें बताईं और सारे उत्तर भारत की स्थिति का परिचय देने में अपनी असमर्थता प्रकट की। इसी तरह कभी मुझसे और कभी **नाथजी** से उनका वार्तालाप होता रहा। संध्या-काल होने पर उन्होंने मुझसे कहा—आपके **संध्या-वन्दन** का क्या प्रबन्ध किया जाए?

मैंने कहा—घर जाकर **संध्योपासन** करूँगा।

चकित-सा होकर उन्होंने कहा—आज तो यहाँ **अर्चन** होगा। आप तो **चक्र-सेवी** हैं। **नाथजी** ने तो ऐसा ही मुझसे कहा है।

मैं बोला—यह तो मेरे सौभाग्य की बात है, जो इस प्रकार का अवसर मिल रहा है। मैं भी यहीं **संध्योपासन** करूँगा।

यह सुनकर **गृह-स्वामी** उठ खड़े हुए और पीछे-पीछे आने को सङ्केत कर उन्होंने घर के अन्दर प्रवेश किया। आँगन से होकर एक दूसरे द्वार से हम एक छोटे-से बगीचे में जा पहुँचे। वह बगीचा उनके मकान से सटा हुआ था। बगीचे की दूसरी तरफ एक छोटा-सा कमरा था। इसी के आगे फर्श में हम लोगों की पूजा का साज-सामान पहले ही से लगा हुआ था। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि यह व्यवस्था अपने आप पहले से कैसे हो गई, क्योंकि गृह-स्वामी बराबर हमारे साथ रहे। उन्होंने इसके लिए बुलाकर किसी को आदेश भी नहीं दिया था। हाँ, यह बात जरूर हुई थी कि एक आदमी बाहर से आकर उसी कमरे से होकर मकान के भीतर चला गया था। सम्भव है, उसी ने यह व्यवस्था की हो। खैर, हम तीनों ने हाथ-पैर धोए, **मार्जन** किया और **आसन** पर जाकर बैठ गए। **संध्या-वन्दन** से हम दोनों जल्दी

छुट्टी पा गए पर **स्वामीजी** ध्यानस्थ ही बैठे रहे। **गृह-स्वामी** से मेरी बातचीत होने लगी। हम दोनों वहाँ से उठकर बगीचे के बीच में एक छोटे-से चबूतरे पर जा बैठे थे। **गृह-स्वामी** ने जब यह देखा कि मैं संस्कृत में उतनी सुगमता से बातचीत नहीं कर सकता, तब वे संस्कृत-मिश्रित हिन्दी में बातचीत करने लगे। उन्होंने **काशी** के तथा **मथुरा** के दो चार **शाक्तों** का नामोल्लेख किया और उनके सम्बन्ध में कुछ जानना चाहा। वे एक बार **काशी** और **मथुरा** आए थे और इसी यात्रा में उन महानुभावों से उनका परिचय हुआ था। उनमें से **मथुरा** के एक सज्जन से और **काशी** के दो सज्जनों से मैं पूर्णतया परिचित था। उनके सम्बन्ध की बातें मुझसे जानकर **गृह-स्वामी** बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने **मथुरा** के सज्जन का नाम लेकर कहा कि हमारे प्रान्त में **श्रीविद्या** के विषय का ज्ञान जितना लोगों को है, उतना मेरी समझ में अन्य प्रान्त के लोगों को न होगा—मेरी ऐसी धारणा थी। परन्तु जब मैं **मथुरा** गया और वहाँ मेरी उनसे भेंट हुई, तब मेरी उक्त धारणा अधिक देर तक न ठहर सकी। वे वास्तव में **श्रीविद्या** के विषय के बड़े भारी ज्ञाता ही नहीं थे, किन्तु उनका **नित्यार्चन** भी उसके अनुरूप ही होता था। **काशी** के एक सज्जन का नाम लेकर बताया कि **आद्या** का प्रकरण जितना उनको ज्ञात था, उसका उतना जानकार मुझको अब तक न मिला। इस तरह मैंने उनके देश के बारे में उस सम्बन्ध में कुछ जानना चाहा, तब उन्होंने कहा कि अब यहाँ भी पहले की सी बात नहीं रही। इस धर्म का बहुत बड़ा ह्रास हो गया है। यहाँ भी लोगों में बहुत अधिक संकीर्णता आ गई है। हम लोगों की बात-चीत हो ही रही थी कि दो नए आगन्तुक वहाँ आ गए। **गृह-स्वामी** ने उनसे अपनी भाषा में कुछ कहा। इस पर वे दोनों व्यक्ति उस कमरे की ओर चले गए। उनके लौटने के बाद **गृह-स्वामी** और मैं **नाथजी** के पास आए। **नाथजी** ने अपने आसन पर से उठकर कहा—अब क्या होगा?

गृह-स्वामी ने कहा—आइए, **पूजा-गृह** में चलें।

भीतर जाने पर देखा कि उस कमरे के भीतर एक कायदे से कोई पचीस आसन बिछे हुए हैं। अपनी दाहनी ओर **स्वामीजी** को बिठाकर गृह-स्वामी एक आसन पर बैठ गए। **नाथजी** ने मुझे अपनी दाहनी ओर बिठा लिया। पूजा का आवश्यक सामान वहाँ पर यथा-स्थान रखा हुआ था। **नाथजी** की अनुमति लेकर **गृह-स्वामी** ने **अर्चन** आरम्भ किया। उस पूजन में सबसे विचित्र बात मैंने यह देखी कि जब जिस वस्तु की आवश्यकता पड़ती थी, उनके वे दो परिचारक ठीक उसी समय पर वह वस्तु लाकर वहाँ रख जाते थे और **गृह-स्वामी** को कुछ माँगना नहीं पड़ता था। **अर्चन** जब समाप्त हो चला, तब मैंने देखा कि एक-एक करके वहाँ अन्य लोग आए और वे **गृह-स्वामी** के पास आकर कोई पात्र रखकर और उनकी अनुमति से उनके संकेतानुसार किसी एक आसन पर चुपचाप बैठ जाते। धीरे-धीरे सभी आसन भर गए। उन आगन्तुकों में कुछ सज्जन सपत्नीक भी थे। यह भी हमने देखा कि उनमें से कोई भी खाली हाथ नहीं आया। दो एक यदि कुछ नहीं ले आए, तो फूल ही लेकर आए। **गृह-स्वामी** की बाईं ओर तरह-तरह की सामग्री के पात्रों का ढेर-सा लग गया था। वह समारोह देखने योग्य था। सभी आगन्तुक रक्ताम्बरधारी थे। सभी

आकृति से नैष्ठिक और साधु-शिष्ट जान पड़ते थे। इधर **गृह-स्वामी** ने बहुत ही तन्मयता के साथ अपना **अर्चन** समाप्त किया। सभी लोगों ने **पुष्पाञ्जलि** छोड़ी। **पुष्पाञ्जलि** की स्तुति स्त्रियों ने बहुत ही मधुर-स्वर में की। इसके बाद यथा विधि **प्रसाद-वितरण** हुआ। इस अवसर पर सभी आगन्तुक साधकों ने यथा-क्रम **देवता की स्तुतियाँ** की। पर **नाथजी** बिल्कुल चुपचाप बैठे रहे। अन्त में **गृह-स्वामी** के अनुरोध पर उन्होंने **शान्ति-स्तव** का पाठ किया। पूजा का जब **विसर्जन** हुआ, तब सबेरा हो रहा था। सारी रात कैसे बीत गई, यह हम लोग जान नहीं सके। बाहर जब आए, तब **गृह-स्वामी** ने हम सब लोगों को विदा किया। चलते समय मैंने **गृह-स्वामी** से कहा—यदि आपको कोई असुविधा न हो, तो आज किसी समय माँ के सम्बन्ध में आकर कुछ बात-चीत करूँ।

उन्होंने कहा—मुझे तो प्रसन्नता होगी। आप अपनी सुविधा के अनुसार जब चाहें, आकर कृपा कर सकते हैं।

मैंने कहा—शाम को चार बजे आकर आपके दर्शन करूँगा।

मार्ग में **नाथजी** ने बताया कि **शास्त्री** बहुत ही प्रवीण साधक है। स्वभाव का भी बहुत ही सुजन है। **श्रीविद्या** के विषय में आप जो जानना चाहेंगे, आपका समाधान कर देगा।

मैंने कहा—**शास्त्रीजी का अर्चन** बहुत ही साङ्गोपाङ्ग हुआ है। मैंने ऐसा **सुव्यवस्थित अर्चन** नहीं देखा। एक बिलकुल नई बात देखी है।

नाथजी ने पूछा—सो क्या?

मैंने कहा—सभी साधक अपने साथ कुछ-न-कुछ पदार्थ अवश्य लाए।

नाथजी बोले—ऐसा तो होना ही चाहिए। यह **सामूहिक पूजा** है। रिक्त-हस्त यहाँ पूजन में कोई नहीं आता। जिसके यहाँ पूजा होती है, उस पर भी इस प्रणाली के कारण वैसा कोई भार नहीं पड़ता। यही कारण है कि यहाँ **चक्र-पूजा** का अच्छा प्रचार है।

मैंने पूछा—क्या सभी जगह इस प्रान्त में इस तरह के **चक्र-पूजन** होते रहते हैं?

"सो बात तो अब नहीं रही। नई सभ्यता की प्रबलता के कारण सभी बातें जल्दी-जल्दी लुप्त होती जा रही हैं। तो भी कुछ ऐसे लोग बचे हुए हैं, जो अपने धर्म पर आज भी अटल हैं।"

हम अपने घर के पास पहुँच गए थे। **नाथजी** ने कहा—लो, तुम अपने घर आ गए और मैं अपने स्थान को जाता हूँ।

मैंने उनका चरण-स्पर्श किया। मेरी मङ्गल-कामना करते हुए उन्होंने कहा—तुम कब यहाँ से प्रस्थान करोगे?

मैंने कहा—कल सुविधानुसार किसी गाड़ी से चला जाऊँगा।

नाथजी चले गए और मैं अपने वास-स्थान को चला आया।

संध्या-समय चार बजे मैं **शास्त्रीजी** के यहाँ जा पहुँचा। **शास्त्रीजी** अपने कमरे में बैठे किसी हस्त-लिखित ग्रन्थ का अवलोकन कर रहे थे। मेरी पद-ध्वनि से वे चौंक पड़े। मेरे अभिवादन का उत्तर देते हुए उठकर उन्होंने मेरा स्वागत किया। इधर उधर की कुछ बातों के बाद मैंने **क्रम-दीक्षा** का प्रश्न छेड़ दिया। **शास्त्रीजी** ने कहा—यह बहुत ही पेचीदा विषय है। मैंने **क्रम** प्राप्त करने में बहुत-सी कठिनाइयों का सामना किया है। अन्वेषण करने पर कैसे भी गुरु मिल सकते हैं। एक ही गुरु से सब **आम्नायों** का मन्त्र प्राप्त होना मुश्किल है। अपना-अपना **क्रम** स्वयं

विचार-द्वारा पूर्ण करना होगा। मैंने भी चार गुरुओं द्वारा **पूर्ण-क्रम** पूर्ण किया है। मुझ जैसा **पूर्ण-क्रमवाला** यदि कोई ब्राह्मण मिल जाए, तो एक ही से **पूर्ण-क्रम** हो सकता है। एक **पूर्ण-क्रमवाला ब्राह्मण गुरु** मिलने से सबके लिए हो सकता है। नहीं तो जिसने जिस **आम्नाय** का जो **क्रम** प्राप्त किया है, उससे उस **आम्नाय** का वही **क्रम** मात्र लेना होगा। एक **क्रम** लिए हुए आदमी को दूसरा **क्रम** देने का अधिकार नहीं है, यानी **श्रीविद्या** में **महा-षोडशाक्षरी मन्त्र** और **कुब्जिका** में **अघोर-कुब्जिका मन्त्र** किसी क्रम से प्राप्त करते ही **सब क्रमों का अधिकारी** नहीं होता है। परन्तु **सब क्रमों के अधिकार के लिए पूर्ण-क्रम** ही चाहिए। हाँ, **महा-क्रम** लेने से भी **पूर्ण-क्रम** के अतिरिक्त और सब क्रमों का अधिकारी होता है।

मैंने विनम्रता के साथ कहा—आप जो कुछ कह रहे हैं, बहुत ठीक है। लेकिन मेरा यह प्रश्न नहीं है। मैं तो **उत्तर और दक्षिण के क्रमों की तुलना** करके यह जानना चाहता हूँ कि दोनों क्रमों में कोई अन्तर तो नहीं है और यदि है, तो कहाँ व कैसा है। अतएव कृपा करके बताइए कि यहाँ के **श्री-कुल की मन्त्र-प्रक्रिया** क्या है?

इस पर **शास्त्रीजी** ने कुछ नहीं कहा और वे कुछ सोचने-सा लगे। थोड़ी देर तक चुप रहकर मैंने फिर कहा—खैर, यह न सही तो इतनी ही कृपा कीजिए। वह यह कि क्या आप ऐसी कुछ पुस्तकें देने की कृपा करेंगें, जिनसे हम यह जान सकें कि **दक्षिण भारत में क्रम-दीक्षा** आदि का कैसा प्रकार है?

मेरे प्रश्न को सुनते ही **शास्त्रीजी** के चेहरे पर ऐसा भाव झलक उठा, जिससे यह प्रतीत हुआ कि वे मेरे इस प्रश्न के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने कहा—जो पुस्तकें मिलेंगी, वे **तामिल लिपि** में लिखी मिलेंगी।

मैंने कहा—कोई हर्ज नहीं है, हम उनकी प्रतिलिपि **देवनागरी** अक्षरों में करा लेंगे।

उन्होंने कहा—आप ठीक कहते हैं; परन्तु यह तो आप जानते ही हैं कि **तान्त्रिक विद्या साङ्केतिक विद्या** होने के कारण यहाँ दक्षिण में जितनी भी तन्त्र-सम्बन्धी पुस्तकें मिलेंगी और मिलती हैं, वे सब सङ्केत-रूप में ही मिलेंगी। अतः जो अधिकारी विद्वान् होंगे, वे ही समझेंगे। अनधिकारी के लिए पद्धति मिलने पर भी यथार्थ ज्ञान होना कठिन है। लिखा भी है, **''सङ्केत-विद्या गुरु-वक्त्र-गम्या''**। फिर जिसने **क्रम-दीक्षा** प्राप्त की है, वह दूसरे को भी **क्रम-दीक्षा** दे सकता है, उसके लिए **मन्त्र-पद्धतियों** और **उपासनादि-क्रम** की भी कोई आवश्यकता नहीं रहती है। जिसने **क्रम-दीक्षा** प्राप्त नहीं की है, उसको **क्रम-दीक्षा** देने का भी अधिकार नहीं है। इस कारण पद्धतियों की कोई विशेष दरकार मालूम नहीं होती है। यदि हठ, सेवा या प्रेम से पद्धतियों और मन्त्रों को अप्राप्त-क्रम पुरुष से लेकर तीसरे को उपदेश दिया जाए, तो देने—लेनेवाले दोनों को और अनधिकारी से मन्त्र लेनेवाले तीनों को हानि के सिवाय लाभ नहीं हो सकता है। क्योंकि, **'क्रम-दीक्षा'**-विषय में **परा-तन्त्र** में **श्रीविद्या-विषय** में ऐसा लिखा है—

षोडशार्णा महा-विद्या, न प्रकाश्या कदाचन।
बिना गुरु-प्रसादेन, श्रीविद्या षोडशाक्षरी।।
दृष्टः प्रजाप्यते यस्तु, स भुक्तो योगिनी-गणैः।
श्रीगुरोः कृपया लब्ध्वा, न प्रकाश्या कदाचन।।
बिना गुरु - प्रसादेन, जपेन्नैव कदाचन।

महाकाल-संहिता में भी ऐसा लिखा है कि—

न शास्त्रमालोक्य वदेन्नाचरेन्न जपेदपि।
न पश्येन्नोपदिश्याच्च, न कुर्यान्नैव साधयेत्॥
गुरूपदेशतो लब्धे, जप - न्यासार्चनादिके।
पश्चात् तत्साधयेत् सर्वं, सदा तद्-भाव-भावितः॥

शास्त्रीजी ने जो यह छोटा-सा भाषण दिया, उससे साफ मालूम हो गया कि वे अपनी कोई बात बताना नहीं चाहते। न पुस्तकें ही देना चाहते हैं। मैंने फिर धृष्टता की। मैंने कहा—आपने जो कहा है, बहुत ठीक है। यहाँ अधिकारी और अनधिकारी का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। **स्वामीजी** से आपको ज्ञात ही हुआ होगा कि मैंने **क्रम-दीक्षा** पाई है। मेरा **पूर्णाभिषेक** भी हो गया है। यहाँ का क्रम मैं केवल इसलिए जानना चाहता हूँ कि उसका अपने यहाँ के प्रचलित क्रम से मिलान कर सकूँ। इसीलिए मैंने आपसे याचना की। आपने प्रारम्भ में जो सौजन्य-पूर्ण व्यवहार मेरे साथ किया, उसी से याचना करने का उत्साह भी हुआ, नहीं तो मैं यह दुस्साहस कदापि न करता।

शास्त्रीजी कुछ हतप्रभ-सा हो गए। उन्होंने कहा—नहीं, नहीं! ऐसा मेरा मतलब नहीं है। लेकिन मैं यह पहले जान लेना चाहूँगा कि आपको **गुरु-देव** से **श्रीविद्या** का कौन-सा मन्त्र मिला है। उस मन्त्र का **न्यास, ध्यान, यन्त्र, आवरण पूजा** सब बताने की कृपा करें, तब हम देखेंगे कि आपके उद्देश्य की हम कहाँ तक पूर्ति कर सकेंगे। परन्तु आपको शपथ-पूर्वक यह प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी कि जो कुछ सामग्री हमसे प्राप्त हो, वह न तो किसी को बताई जाए और न छपवाकर प्रकाशित ही की जाए।

इस पर मैंने निवेदन किया—आपने जो कुछ कहा, वह मैं स्वीकार कर लेता परन्तु मैं इस बात का समर्थक नहीं हूँ कि **धर्म-सम्बन्धी रहस्य की बातें** गुप्त रखी जाएँ। **सदाशिव** ने **तन्त्र-मार्ग का उपदेश** लोक-कल्याण के लिए किया है। ऐसी दशा में मैं कोई प्रतिज्ञा नहीं कर सकता। आप चाहे बतावें, चाहे न बतावें। आपके इस दृष्टि-कोण से मैं उनके जानने का अधिकारी भी नहीं हूँ। पहले से आपके विचारों से यदि मैं परिचित होता, तो मैंने भूलकर भी आपको इतना कष्ट न दिया होता। अपनी धृष्टता के लिये क्षमा माँगता हूँ।

इसमें सन्देह नहीं कि मैंने अपनी यह बात उतनी विनम्रता से नहीं कही थी। **शास्त्रीजी** भी उसका सुर ताड़ गए।

उन्होंने कहा—आप तो नाराज-सा हो गए हैं। मैं मानता हूँ कि **तन्त्र-धर्म का उपदेश** सर्व-साधारण के लिए हुआ है। यह **क्रम-दीक्षा** और **कुल-मार्ग** का महत्व सब हिन्दुओं में प्रचारणीय है। **महा-निर्वाण-तन्त्र** में लिखा है कि **''कलावागममुल्लंघ्य, योऽन्य-मार्गे प्रवर्त्तते। न तस्य गतिरस्तीति, सत्यं सत्यं न संशयः।''** पुनश्च **''कल प्राबल्य-समये, सर्व-धर्म-विवर्जिते। गोपनात् कुल-धर्मस्य, कौलोऽपि नारकी भवेत्।''** कुल-धर्म के विषय में ऐसा वचन होने से मेरी भी इसमें सम्मति है। परन्तु मन्त्र के विषय में नहीं है क्योंकि **मन्त्र-मुक्तावली** में ऐसा लिखा है कि **''तयोर्वत्सर-मात्रेण, ज्ञातोऽन्योन्यं भविष्यति। गुरुतां शिष्यता वापि, नान्यथेति विनिश्चयः॥''** और **विश्वसार-तन्त्र** में भी लिखा है कि **''अभक्तेभ्योऽपि पुत्रेभ्यो, दत्वा मृत्युमवाप्नुयात्''।** इसीलिए जो आदमी प्रचार के लिए भक्ति-पूर्वक अन्वेषण करेगा, वही अधिकारी होने के योग्य होगा। उसी को मन्त्र बताना उचित होगा।

मैंने कहा—आपने जो यह कहा है कि मैं नाराज हो गया हूँ सो यदि मेरे किसी वाक्य से

ऐसा ध्वनित हुआ हो, तो उसके लिए मैं क्षमा माँगता हूँ। मैं तो जिज्ञासु-भाव से ही आपके पास आया हूँ। लेकिन आपने इसकी ओर नहीं ध्यान दिया। मेरी धृष्टता क्षमा करें, यदि मैं यह कहूँ कि जो आप जानते हैं, उसे आप मानते नहीं है। जब आपका यह मत है कि **आगम** के आदेशानुसार इस मार्ग का **प्रचार** होना चाहिए, तब अपने कर्तव्य से आप विमुख क्यों होते हैं? **मन्त्र-मुक्तावली** का वचन किस **आगम** का है; इस पर भी विचार करना होगा। **तन्त्र-सङ्केत, अधिकारी-भेद, गुरु मुख का आदेश** आदि बातें इस मार्ग के प्रचार में भीषण बाधाएँ हैं। परन्तु मैं आपके पास विवाद करने के लिए नहीं आया हूँ। आपका मैंने समय नष्ट किया है और अब अति काल भी हो आया है। अतएव मैं आपसे बिदा माँगता हूँ।

यह कहकर मैंने उनको प्रणाम किया और उठ खड़ा हुआ। **शास्त्रीजी** ने नमस्कार करते हुए उठकर कहा—आप मुझे ठीक तरह समझे नहीं है। मेरे और आपके विचार बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं। परन्तु न तो मुझमें ऐसा साहस है और न **गुरु का आदेश** ही प्राप्त है कि इस मार्ग के रहस्य का भेद खोलूँ। हाँ यदि आप महीना-दो-महीना यहाँ ठहर जाते, तो सम्भव था कि आपकी अभिलाषा पूर्ण हो जाती। मेरा और आपका परिचय ही अभी कितने दिन का है!

यह कहकर **शास्त्री जी** जोर से हँस पड़े और बड़े प्रेम-पूर्वक मेरा गाढ़ालिङ्गन किया। इस पर मैंने **शास्त्रीजी** के **चरण-स्पर्श** किए और विदा होते हुए कहा—यदि भाग्य में बदा होगा, तो फिर कभी इधर आने का प्रयत्न करूँगा।

घर आकर मैंने उस दिन पूर्ण विश्राम किया। दूसरे दिन मैंने नित्य-कर्म से छुट्टी पाकर भोजन बनाया और **नाथजी** के स्थान की ओर गया। **नाथजी** अपने भ्रमण में मग्न थे। मुझे आता देखकर वे अपने बैठने की जगह पर आकर बैठ गए। उनका **सभक्ति अभिवादन** करके भोजन-सामग्री मैंने उनके सामने रख दी। हँसकर **नाथजी** ने कहा—आज जान पड़ता है, आप जाएँगे।

मैंने कहा—हाँ, **प्रसाद** लेने आया हूँ।

मुझे **प्रसाद** देकर **नाथजी** ने भोजन आरम्भ किया। बातचीत भी होती रही। **शास्त्रीजी** के सम्बन्ध में पूछा कि वहाँ कैसी बातें हुई।

मैंने कहा—**शास्त्र की चर्चा** होती रही। पण्डित हैं, **रहस्य की रक्षा** करना जानते हैं। कुछ भी बताने को तैयार नहीं हुए।

उन्होंने कहा— तुम्हे जानना ही क्या है? तुम तो पूर्ण हो।

मैंने कहा—तब भी बहुत जानना बाकी है। **क्रम** के मन्त्रों में प्रायः भेद मिलता है। उनकी प्रक्रियाओं में भी अन्तर मिलता है। **कश्मीर, मिथिला, वङ्ग** की प्रक्रियाओं का मैंने तुलना-मूलक अध्ययन किया है। यहाँ की भी प्रक्रिया जान लेना चाहता था।

नाथजी बोले—इस झंझट में क्यों पड़ते हो। यह सब लीला निबन्धकारों की है। इसमें पड़ना अपना समय नष्ट करना है। **गुरु** से जो मिल गया है, उसी को दृढ़ता से पकड़े रहो। कल्याण होगा।

इस तरह बड़ी देर तक बातचीत होती रही। **तर्पण-भोजन** के उपरान्त **नाथजी** से आदेश लेकर मैं अपने स्थान को लौट आया। सामान पहले से बँधा रखा था। **मुथूस्वामी** से अनुमति लेकर ताँगे पर सवार होकर मैं स्टेशन चला गया।

साधक का संवाद

१०. कुल-धर्म

(१)

दूकान से छुट्टी पाकर मैं अपनी बैठक में घुस रहा था कि पीछे से किसी ने आवाज दी—**'शर्मा जी!'** मैंने घूमकर देखा कि **सेठ मगनीराम** हाँफते हुए सीढ़ियाँ चढ़ रहे हैं। बरामदे में आकर गहरी साँस लेकर उन्होंने कहा—भाई, मर गया! तुम्हारे मकान में आना क्या होता है, शूली पर चढ़ जाना होता है।

बैठक के भीतर ले जाकर मैंने उन्हें सोफे पर बैठाया और कहा—मलाई खाकर अपने को इतना मोटा क्यों बना लिया है? कहो, यहाँ आने का क्यों कष्ट किया है? मुझे अपने यहाँ क्यों नहीं बुला लिया?

मगनीराम—भाई, आज कैसे बुलाता? यों तो जब चाहता था, बुला लेता था।

मैंने कहा—खैर, कहिए, क्या आज्ञा है?

मगनीराम—तुम्हारी **वीणा** की शादी की तिथि निश्चित हो गई है। देश से चिट्ठी आई है, तुम्हारी **भाभी** ने लिखा है कि **शर्मा जी** को लेकर ही आना। अगर वे न आवें, तो तुम भी न आना। मैं **वीणा** की शादी तुम दोनों के बिना ही कर लूँगी। लो, पढ़ो यह चिट्ठी।

यह कहकर उन्होंने एक चिट्ठी मेरे आगे रख दी और चुपचाप सोफे पर लुढ़क गए।

मैंने चिट्ठी उठा ली और उसे खोलकर सरसरी निगाह से देख गया। **मगनीराम** को चिट्ठी देते हुए मैंने कहा—**भाभी** की आज्ञा को कैसे टाल सकता हूँ? परन्तु आप आगे-आगे चलें। मैं बाद में आऊँगा। ठीक विवाह के समय पहुँच जाऊँगा।

मगनीराम इतना सुनते ही उठकर बैठ गए और बोले—सो नहीं होगा। तुम्हें साथ न देखकर, वह मुझे घर में न घुसने देगी। उसका स्वभाव तो तुम जानते ही हो। जब तुम चलोगे, तब मैं भी चलूँगा।

मैंने कहा—पहले से नहीं जाओगे, तो वहाँ प्रबन्ध कौन करेगा?

मगनीराम—प्रबन्ध तो वह अपने आप करती है, उसमें किसी को हाथ नहीं डालने देती। हम लोग तो नेवतहारी से जाएँगे।

मैंने कहा—तो भी दो दिन पहले जाना चाहिए।

यह कहकर मैंने **पञ्चाङ्ग** उठाया और यात्रा का दिन निश्चित कर दिया। **मगनीराम** इससे बहुत खुश हुए और वे अपने घर चले गए।

मगनीराम मेरे मित्र ही नहीं, सब कुछ थे। उन्होंने पग-पग पर मेरी सहायता करके मुझे कलकत्ते का व्यापारी बना दिया और **भाभी** ने तो जब धन की आवश्यकता पड़ी, आँख मूँदकर हजारों की थैली चुपचाप थमा दी। ऐसी दशा में **वीणा** की शादी में क्यों न जाता। दो ही दिन के भीतर मैंने अपनी सारी व्यवस्था ठीक कर ली और शुभ मुहूर्त में **मगनीराम** के साथ मैं **राजस्थान** की यात्रा को चला।

जब मैं **मगनीराम** के नगर पहुँच गया और उनके घर पहुँच कर **भाभी जी** के चरण स्पर्श किए, तब उन्होंने अपने गुमाश्ते को सम्बोधित करके गद्‌गद् स्वर में कहा—'देख, **शर्मा** आया कि नहीं। तू कहता था कि नहीं आएगा, वह इस समय अकेला है। उसकी दुकान कौन सँभालेगा? फिर उन्होंने मेरी ओर मुँह करके कहा—इन्होंने तो खोंचेवालों से अपना काम चलाया होगा। इस लम्बी यात्रा में तुम भूखे ही रहे होगे। अच्छा, सबसे पहले तुम **स्नान-पूजन** करके अपने भोजन की तैयारी करो।

मैंने कहा—**भाभी,** मैं भूखा नहीं रहा, नहा-धो भी चुका हूँ। खा-पी भी चुका हूँ। मुझे काम बताइए।

भाभी ने कहा—खैर, आज रात को आराम करो, यात्रा के थके हो। तुम्हें काम क्या बताना है, तुम सब जानते-बूझते हो। तुम्हारे आ जाने से मेरी सारी चिन्ताएँ दूर हो गई हैं। कल से अपना देखना-भालना।

दूसरे दिन जब मैंने देखा-भाला, तब सब प्रबन्ध चौकस पाया। **भाभी** ने विवाह की ठीक-ठीक तैयारी कर ली थी। विवाह बड़ी धूम से हुआ। बरातवाले भी बड़े सज्जन निकले। नामी व्यापारी होते हुए भी वर के कुटुम्बियों में ब्राह्मणोचित सभी गुण विद्यमान थे। **वर के पिता** मुझे एक दिन गाँव के बाहर **देव-दर्शनार्थ** अपने साथ लिवा ले गए। एकान्त स्थल में जाकर उन्होंने मुझसे कहा कि 'तुम तो **साधक** जान पड़ते हो।' यह बात उन्होंने इतने प्रभावोत्पादक ढङ्ग से कही कि मुझसे नाहीं नहीं करते बनी। अब वे एक अच्छी जगह पर बैठकर **धर्म-सम्बन्धी बातचीत** करने लगे। मैंने कुछ चकित-सा होकर कहा कि— मुझे तो आप पहले **मारवाड़ी ब्राह्मण** मिले हैं, जो अपने को **शाक्त** बताते हैं!

उन्होंने हँसकर कहा—आप दूर देश के निवासी हैं। आपको इसका पता कैसे लग सकता है? हम **गौड़ों** का **'शाक्त-धर्म'** में अपना एक अलग सम्प्रदाय है। **राजस्थान** में **'शाक्त-धर्म'** का जो व्यापक प्रचार दिखाई दे रहा है, भले ही यह **दक्षिणाचार** ही हो हमारे उसी **गौड़ सम्प्रदाय** का प्रभाव है।

मैंने कहा—परन्तु आपका वह सम्प्रदाय कहीं दिखाई तो नहीं देता।

वे बोले—यह दिखाई देने की चीज तो नहीं है। यह तो **'कुल-धर्म'** है और आज भी यह यहाँ के सद्‌-गौड़ परिवारों में आपको मिलेगा। हाँ, **राजस्थान** में इस समय वैश्य-भावना का प्राबल्य हो गया है। इससे हम लोगों का **'कुल-मार्ग'** बहुत कुछ दब गया है। यह भी एक कारण है कि आज-कल की नई रोशनी ने उसे और भी पीछे डाल दिया। परन्तु, ऐसा नहीं है कि उसका उन्मूलन हो गया हो। वह है और बहुत कुछ अपने मूल रूप में ही है। हाँ, बहुत जँचे हुए ही **साधक** हम लोगों में प्रवेश पा सकते हैं।

मुझे भले प्रकार भासित हो गया कि ये एक उच्च-कोटि के **साधक** जान पड़ते हैं। अतएव इनसे **रहस्य-सम्बन्धी प्रश्न** करना चाहिए। यह सोचकर मैंने **'शाक्तों के अर्चन'** की बात छेड़ दी।

तब उन्होंने हँसकर कहा—भाई, जो तुम पूछ रहे हो, वह तो इस तरह नहीं कहा जा सकता। मुझे उस विषय का उतना ज्ञान भी नहीं है। **गुरु-देव** ने जो बता दिया है, वह करता रहता हूँ। जब तुम स्वयं **साधक** हो, तब वह सब तुम भी जानते ही होगे। ऐसी दशा में क्या बताऊँ?

"यही कि **चक्रार्चन** का क्या रहस्य है?" मैंने आग्रह के भाव से कहा।

"रहस्य की बात तो मैं नहीं जानता। **अर्चन** जिस तरह करता हूँ, केवल वही जानता हूँ।

रहस्य की बात तो **महात्मा** लोग जानें।''

मैंने दृढ़ता से कहा—आप भी तो एक **महात्मा** हैं।

''यहाँ तुम भूल रहे हो। मैं तो **मैया का एक क्षुद्र सेवक** भर हूँ। घर-गृहस्थी के काम काज से जब छुट्टी पाता हूँ, तब रात-बिरात जो कुछ भी बन पड़ा, कर लेता हूँ।''

उनके इस प्रकार के उत्तरों से मैं निराश-सा हो चला और वह बात उनसे छिपी न रह सकी। उन्होंने बहुत मधुर स्वर में कहा—भैया, जो बात तुम जानना चाहते हो, वह **मैया की कृपा** होने पर ही जान पाओगे; किसी के बताने से नहीं। असल बात यह है कि आजकल हम लोग **'स्व-धर्म'** छोड़ बैठे हैं। इसी से ठीक राह नहीं मिल रही है।

मैंने कहा—आपका क्या मतलब है?

''यही कि आज के **गृहस्थ— साधु-सन्तों** के पीछे फिर रहे हैं। वे समझते हैं कि उनके जरा-सा इशारा कर देने पर उनको **मुक्ति का मार्ग** मिल जाएगा और उन्हें कुछ करना-धरना नहीं पड़ेगा।''

''तब वे क्या करें?'' मैंने जरा शुष्कता के साथ पूछा।

''**स्व-धर्म** का पालन करें। आखिर गृहस्थ का भी तो अपना कोई धर्म होता है? साधु-सन्तों को भोजन देकर नमस्कार करें बस, **मुक्ति** आदि तो अपना **'धर्म'-पालन** करने पर ही मिलेगी, साधुओं की गद्दियों का चक्कर काटने से नहीं।''

''उनका वह **स्व-धर्म** क्या है?'' मैंने कुछ क्षोभ के साथ पूछा।

''यही तो जानने की बात है।'' उन्होंने गम्भीर होकर कहा—''परन्तु इस महत्व की ओर आज कोई भी ध्यान नहीं दे रहा है। **'स्व-धर्म'** अर्थात् **'गृहस्थ'-धर्म** का लोगों की निगाह में कोई मूल्य नहीं है।''

उनकी बात को मैं हृदयङ्गम नहीं कर सका। अतएव मैंने उन्हीं की हाँ-में-हाँ मिलाते हुए कह दिया —आप यथार्थ ही कहते हैं। हम **गृहस्थ** लोग सचमुच यह नहीं जानते कि हमारा अपना भी कोई **धर्म** है, जो हमें इस **भव-सागर** से पार लगा सकता है।

वे कहते गए—जब तक हम **अपने धर्म** को भूले रहेंगे, तब तक हम **रहस्य की बातें जानने के अधिकारी** नहीं हो सकते। पहले **'स्व-धर्म'** के जानने का ही नहीं, उसके पालन करने का प्रयत्न होना चाहिए। **रहस्य के जानने का मार्ग** अपने-आप खुल जाएगा। किसी से पूछ-ताछ करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाएगी।

मुझे ऐसा जान पड़ा कि वे ऊपर की बातों से मुझे टाल-सा रहे हैं और असली बात बताना नहीं चाहते। मैं मन-ही-मन खीझ-सा उठा।

मैंने कहा—परन्तु, **'गृहस्थ'-धर्म** का यथा-शक्ति सभी लोग पालन करते हैं।

''यदि ऐसा होता, तो फिर लोग **मुक्ति की खोज** में **साधु-सन्तों** के पीछे लगे न फिरते होते। यदि उनकी **अपने धर्म में आस्था** होती, तो आज संसार में **मनुष्य-पूजा** का बोल-बाला न होता। **'गृहस्थ'-धर्म** एक महान् धर्म है। इसी के द्वारा **'निःश्रेयस'** और **'अभ्युदय'** दोनों की सिद्धि प्राप्त होती है। हमारा **'कुल-धर्म'** ही रहस्य की भाषा में **'गृहस्थ'-धर्म** है।'' इतना कहते-कहते उनका मुख-मण्डल एक विलक्षण आभा से प्रदीप्त हो उठा। वे भावावेश में आकर धारा-प्रवाह भाषण-सा करने लगे।

उन्होंने कहा—''लोग **तन्त्रों** को पढ़ते नहीं हैं। **शाक्त उपासक** की **तन्त्रों** में बड़ी प्रशंसा है। **'मुण्डमाला तन्त्र'** के दूसरे पटल में **सदाशिव—माता** से इस प्रकार कहते हैं—**'हे देवि, शाक्त के बराबर दूसरा कोई नहीं है। वह स्वयं शङ्कर है, साक्षात् पर-ब्रह्म है। जो काली, तारा, भुवनेश्वरी,**

षोडशी, मातङ्गी, छिन्नमस्ता, बगला आदि की पूजा करता है, वह शिव नहीं तो और क्या होगा।' इसी प्रकार तीसरे पटल में कहा है—**'शाक्त साक्षात् शङ्कर का रूप है। वह चाहे जिस जाति में उत्पन्न हुआ हो। वह चाहे चाण्डाल, ब्राह्मण, शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य किसी भी जाति में उत्पन्न हुआ हो। हे देवि, वे सभी शङ्कर हैं।'**

'निर्वाण-तन्त्र' में **गृहस्थ शाक्त-साधक** का यह धर्म बतलाया गया है —**'पाठ, होम, अतिथि-सेवा, देव-पूजा, पितृ-श्रद्धा, कुलाचार, तत्त्व-ज्ञान, निज स्त्री-पूजा** और **कुटुम्बियों के सम्मान में अनुरक्त रहना** गृहस्थ साधक का एकान्त धर्म है।' वहीं लिखा है —'जो साधक **सत्य-निष्ठ** और **जितेन्द्रिय** तथा **दया-शील** है और **कुलाचार** में निरत है, उस पर **कलि-काल का प्रभाव** नहीं पड़ता है। जो साधक **गुरु-भक्त, माता के भजन में निरत** और **अपनी पत्नी में अनुरक्त** है, उसको **कलि-काल** पीड़ित नहीं करता। जो **कुलाचार-रत साधक** कुटिलता, असत्य से दूर रहते हैं और **सदा पवित्र** तथा **दूसरों का उपकार** किया करते हैं, उनका **कलि-काल** दास हो जाता है। अतएव **शिव की आज्ञा** के अनुसार **शाक्त-साधक** का **सत्यवादी, जितेन्द्रिय, दयावान, गुरु-भक्त, मातृ-भक्त, स्व-पत्नी-अनुरक्त** और **परोपकारी** होना **परम धर्म** है। तभी साधक को अपनी **साधना में सिद्धि** मिल सकती है।'' यह कहकर वे चुप हो रहे।

मैंने कहा—आपके इस **सदुपदेश** से मुझे अनेक नई बातें ज्ञात हुई हैं और **'गृहस्थ'-धर्म** की तो बात आपने सर्वथा नई ही बताई है।

'नई बात तो कोई मैंने नहीं कही। ये सब बातें तो परम्परा-गत है।'

'परन्तु मुझे नहीं ज्ञात थीं। मैंने **'तन्त्र'**-ग्रन्थों का अध्ययन ही कहाँ किया है! क्या मैं आपसे एक बात पूछ सकता हूँ?'

'हाँ, हाँ, पूछिए।'

'क्या हमारे **सेठ जी** उपासक हैं?'

'हाँ, **दीक्षित** हैं। परन्तु उन्हें उतना अधिक प्रेम नहीं है, जितना उनकी पत्नी को। उनकी पत्नी एक **उच्च-कोटि के साधक की कन्या** हैं, सुपठित हैं और कर्म-काण्ड का उन्हें अच्छा अभ्यास तथा ज्ञान है।'

यह सुनकर मैं अवाक् रह गया क्योंकि **मगनीराम** और उनके परिवार के लोगों से मेरा वर्षों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, परन्तु इस सम्बन्ध में उन्होंने कभी चर्चा तक नहीं की। यद्यपि वे जानते थे कि मैंने **'शाक्त-दीक्षा'** ली है और **शाक्तों** से अधिकतर मिला-जुला करता हूँ।

उन्होंने कहा—आओ अब चलें, काफी देर हो गई है।

हम लोगों ने जाकर **देवता का दर्शन** किया और **जनवासे** लौट आए। खेद है कि समयाभाव के कारण मैं उनका अधिक सत्सङ्ग न कर सका। वे वास्तव में एक उच्च-कोटि के साधक थे। यहाँ यह कह देना भी उचित समझता हूँ कि उनसे मिलकर मेरी यह पुरानी धारणा दूर हो गई कि **गौड़ ब्राह्मणों में 'शाक्त-धर्म' के साधक** नहीं हैं। वास्तव में उनकी उनमें एक अच्छी बड़ी संख्या है और वे **'स्व-धर्म'** का सविधि दृढ़ता से पालन करते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि वे अत्यन्त गुप्त रहते हैं।

(२)

विवाह के बाद मैं दो दिन और रुका रहा। उसके बाद मैंने **कलकत्ते** लौटने की **भाभी जी** से आज्ञा माँगी। **भाभी जी** जानती थीं कि **कलकत्ते** में मेरा काम सँभालनेवाला कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। अतएव उन्होंने अनुमति दे दी। मैं **कलकत्ते** लौट आया। मेरे आने के सात दिन बाद **सेठ जी** भी **कलकत्ते** आ गए। **भाभी जी** कोई एक महीना बाद आईं। उनके आने पर मैं उनसे

मिलने उनके घर पर गया। बड़ी देर तक बातचीत होती रही। अन्त में मौका पाने पर मैंने कहा—**भाभी,** यदि ढिठाई क्षमा करें, तो मैं आपसे कुछ निवेदन करूँ।

उन्होंने हँसकर कहा—हाँ हाँ, कहो, क्या कहते हो?

मैंने कुछ गम्भीर होकर कहा—**भाभी जी,** इस दुनिया में केवल आप ही को मैंने समझा था कि मुझसे कभी किसी तरह का पर्दा नहीं रखती हैं। परन्तु; अब मुझे कुछ जान पड़ता है कि आप भी मुझसे सब बातें नहीं कहती हैं, कुछ छिपाए अवश्य रहती हैं।

उन्होंने चकित-सा होकर कहा—**शर्मा,** तुम्हारा यह आरोप निराधार है। मैं एक तो किसी के साथ भेद-भाव नहीं रखती हूँ, पर तुमसे तो किसी तरह का रख ही नहीं सकती हूँ, क्योंकि मैं तुम्हारा उतना ही प्यार करती हूँ जितना **गोपी** का।

मैंने कहा—आप ठीक कहती हैं। यह सब सच है, परन्तु एक चीज आपके पास है, जिसका भेद आपने मुझ पर कभी प्रकट नहीं किया।

विस्मय-भरे विस्फारित नेत्रों से मेरी ओर देखते हुए उन्होंने मन्द स्वर में मुझसे पूछा—वह कौन-सी चीज है **शर्मा,** जिसकी चर्चा मैंने तुमसे कभी नहीं की?

मैंने कहा—वही अपनी **उपासना** की।

उन्होंने उसी तरह फिर पूछा—**उपासना?**

मैंने कहा—**भाभी जी,** अब छिपाना व्यर्थ है। आपके **समधी** ने मुझे बता दिया है। आप **'शाक्त'-धर्म** की **'एक श्रेष्ठ उपासिका'** हैं। मुझे दुःख हुआ इसलिए कि मुझको **शाक्त** जानकर भी आपने अपने **शाक्त** होने की बात कभी नहीं बताई।

उन्होंने अति मधुर हँसी हँसते हुए कहा—**शर्मा,** तुम्हारे पास कितना रुपया है? क्या तुमने कभी मुझसे बतलाया है? या और कभी किसी से उसकी चर्चा की है?

मैंने कहा—नहीं, कभी नहीं। लेकिन यदि आप पूछती तो मैं बता देता।

उन्होंने कहा—जब तुम अपने इस **नाशमान भौतिक धन** की बात छिपाए रखना उचित समझते हो, तब तुम किसी से कैसे आशा कर सकते हो कि वह अपने **उपासना-रूपी परम धन** की बात सबसे कहता फिरेगा! यह तो एक बहुत ही सीधी-सादी बात है। फिर तुमने कभी ऐसी कुछ जिज्ञासा भी नहीं की।

मैंने कहा—यह तो ठीक है, परन्तु आप जानती थीं कि मैंने **'शाक्त-धर्म' की दीक्षा** ली है और मेरा **'अभिषेक'** तक भी हो चुका है। तब भी आपने अपने को नहीं प्रकट किया।

उन्होंने कहा—हमारा **'कुलाचार'** ही ऐसा है। हम लोगों पर इस बात का प्रतिबन्ध है कि अपनी ओर से हम किसी पर अपनी उपासना की बात न प्रकट करें, चाहे वह **साधक** ही क्यों न हो और **साधक** ही क्या, वह **सिद्ध पुरुष** ही क्यों न हो।

मैंने कहा—यदि ऐसा है तो आपके **समधी** ने मुझ पर अपना भेद क्यों प्रकट किया? वे भी तो आपके **गौड़ सम्प्रदाय** के हैं।

उन्होंने कहा—इसका उत्तर वही दे सकते हैं। मैं तो अपने **'कुलाचार'** की बात जानती हूँ। सम्प्रदाय के एक होने से क्या होता है? हमारे मण्डल में बीसों परिवार हैं, परन्तु क्या मजाल है कि कोई हम लोगों को जान भी सके कि हम किसके उपासक हैं।

मैंने पूछा—क्या आपके **समधी** आपके

मण्डल के नहीं हैं?

उन्होंने कहा—मण्डल के क्या, वे तो हमारे मण्डल के सरगना हैं और जहाँ तक मैं जानती हूँ, वे भी **'कुलाचार'** का दृढ़ता से पालन करते हैं। मुझे आश्चर्य होता है कि उन्होंने तुमसे यह रहस्य क्यों प्रकट कर दिया!

मैंने हँसते हुए कहा—जितना स्त्रियाँ रहस्य को छिपा सकती हैं, उतना पुरुष नहीं।

उन्होंने कहा—नहीं, ऐसी बात नहीं। हमारे मण्डल के सभी व्यक्तियों को **'कुलाचार का पालन'** करना ही होगा, परन्तु उन्होंने यह नियम भङ्ग क्यों किया, इसका ठीक-ठीक उत्तर वही दे सकते हैं।

मैंने कहा—खैर, इस बात को जाने दीजिए। अब आप बताइए कि क्या अब भी आप मुझसे इस **रहस्य** को छिपाए रहेंगी?

उन्होंने कहा—मुझे छिपाना क्या है? जो बात तुम जान चुके हो, वह तो जान ही चुके हो। अब क्या छिपाना रहा?

मैंने कहा—मैं आपके **'गौड़ सम्प्रदाय'** की विशेषताओं को जानना चाहता हूँ।

उन्होंने कहा—यह सब तो पण्डित लोग जानें। मैं एक साधारण स्त्री हूँ। पढ़ी-लिखी भी उतना नहीं हूँ। **सम्प्रदाय की विशेषताएँ** मैं क्या बता सकती हूँ?

मैंने हँसते हुए कहा—फिर वही बात आप कर रही हैं। आपके **समधी जी** कहते थे कि आपके पूज्य पिताजी **'कुल-मार्ग'** के पूर्ण ज्ञाता थे और उन्होंने आपको भी सब प्रकार पूर्ण कर दिया है।

उन्होंने कहा—**समधी जी** ने जो कुछ कहा है, ठीक कहा है। मेरे **पिता जी** सचमुच ही **उच्च-कोटि के साधक** थे, परन्तु मैं भी उन्हीं की तरह पूर्ण हूँ, यह सर्वथा अतिशयोक्ति है।

मैंने कहा—हाँ, हो सकता है। परन्तु यह तो है ही कि आपको **'कुल-मार्ग'** का अच्छा ज्ञान है।

उन्होंने कहा—हाँ, **पिता जी की कृपा** से मैं अपनी **उपासना की बातें** जरूर जान गई हूँ, परन्तु **'कुल-मार्ग'** का पूर्ण ज्ञान मुझे हो, ऐसा नहीं है।

मैंने कहा—अच्छा, आप जितना जानती हैं, उतना ही मुझे बताने की कृपा करें।

उन्होंने कहा—ऐसी कोई बात नहीं है, जो तुम न जानते हो क्योंकि **'कुल-धर्म'** में सभी जगह **एक-रूपता** है; कहीं-कहीं देश-काल के अनुसार कुछ अन्तर हो गया है, परन्तु उसका **मूल रूप एक** ही है।

मैंने अति विनम्र होकर कहा—**भाभी जी,** मैं चाहे जो कुछ जानता होऊँ, उसकी ओर आप ध्यान न दें। मैं आपके मुख से आज कुछ **धर्मोपदेश** सुनना चाहता हूँ।

उन्होंने हँसकर कहा—**धर्मोपदेश** आचार्य लोग करते हैं। मैं आचार्य नहीं हूँ।

मैंने कहा—आप चाहे कुछ कहें, इससे तो आप इन्कार ही नहीं कर सकती हैं कि आप एक महान् **कुलज्ञ आचार्य की सुयोग्य कन्या** हैं।

उन्होंने कहा—यह तो ठीक है। मेरे **पिता जी** इस मार्ग के बहुत बड़े ज्ञाता थे। ज्ञाता ही नहीं, वे **सिद्ध महात्मा** भी थे। **'कुलाचार'** का ज्ञान उनका अपूर्व था। आज-कल के साधक साधना भले करते हों, परन्तु **'कुलाचार'** का ज्ञान बिरले ही में पाया जाता है। आप लोग अपने मन में भले ही यह समझते हों कि आपको कोई जानता नहीं है कि ये **कौल** हैं; परन्तु बाहरवाले जो आपके सम्पर्क में आ जाते हैं, तुरन्त ही

जान जाते हैं कि आप कैसे हैं और आपकी कैसी उपासना है। परन्तु हम लोगों के यहाँ ऐसा **'कुलाचार'** है कि साधक तक एक दूसरे को नहीं जानते हैं कि अमुक व्यक्ति साधक है।

मैंने कहा—आप ठीक कहती हैं। **उपासना को गुप्त रखने का सिद्धान्त** मैं मानता हूँ, परन्तु मैं इस सम्बन्ध में पूर्ण रूप से आप से सहमत नहीं हूँ।

उन्होंने कहा—तुम सहमत कैसे होगे? तुम लोग **'कुलाचार'** को छोड़ चुके हो, **'अवधूताचार'** का अनुसरण करते हो, जो **'कुलाचार'** से भिन्न है।

मैंने कहा—यह बात आपने अनोखी कही। यह **'अवधूताचार'** क्या चीज है?

उन्होंने कहा—**'अवधूताचार'** एक प्रकार का स्वेच्छाचार है। इस आचार में शास्त्र-निर्दिष्ट **'कुलाचार'** की प्रायः अवहेलना की जाती है।

मैंने कहा—अच्छा, अब आप यह बताने की कृपा करें कि आपके **'कुलाचार' में पूजन** किस तरह होता है? तब शायद मैं इन दोनों आचारों का भेद समझ पाऊँ।

उन्होंने कहा—पूजन में कोई भेद नहीं है। वही **'तन्त्रोक्त निशा-पूजा'** है, जो सभी साधक करते हैं। उसका क्रम संक्षेप में **'तोडल तन्त्र'** में बताया गया है। **पिता जी** ने मुझसे ऐसा ही कहा था, जो इस तरह है। **'मङ्गलाचरण'** करके साधक पूजा के प्रारम्भ का **सङ्कल्प** करे। फिर **आचमन** कर **सामान्य अर्घ्य** स्थापित करे। उससे **द्वार-देवताओं की पूजा** कर तीन बार **विघ्नों का वारण** और **भूतों का अपसरण** करे। फिर **आसन की शुद्धि** और **गुरु को नमस्कार, दिग्बन्धन** करे। इसके बाद अपने को अग्नि से वेष्टित कर **'भूत-शुद्धि'** करे। इसके बाद **मातृका, षडङ्ग-न्यास, अन्तर्मातृका-न्यास, मातृका-ध्यान, बाह्य-मातृका-न्यास, पीठ-न्यास, प्राणायाम,** अपने **इष्ट-मन्त्र का ऋष्यादि-न्यास, कर-न्यास, षडङ्ग-न्यास, वर्ण-न्यास, षोढा-न्यास, व्यापक-न्यास, तत्त्व-न्यास, बीज-न्यास, व्यापक-न्यास, मूल-मन्त्र-न्यास** करके **इष्ट-देवता की मानसिक पूजा** करे। इसके बाद **विशेषार्घ्य की स्थापना** कर और **इष्ट-देवता की पीठ-पूजा** कर उसका **ध्यान** करे और **मुद्रा** बनाकर दिखाए। फिर **प्राण-प्रतिष्ठा** कर **मन्त्र से पूजन** करे और **आवरण-अङ्गों के पूजन** की आज्ञा लेकर **अङ्ग-पूजन** आरम्भ करे। फिर **'बलिदान'** और **'होम'** कर **'प्राणायाम'** तथा **'जप'** करे। उसके बाद **'जप-फल'** को अर्पित कर **'प्राणायाम'** करे। इसके बाद **'कवच'-स्तोत्र का पाठ** कर **इष्ट-देवता को साष्टाङ्ग प्रणाम** करे और अपने को **शिव-रूप** मानकर **संहार-मुद्रा से देवता का विसर्जन** करे। **ईशान-कोण** में **उच्छिष्ट चाण्डालिनी को बलि** देकर **अर्घ्य का जल** सिर पर छिड़के और **चन्दन** माथे में लगाकर **नैवेद्य** ग्रहण करे। पूजा का यही क्रम प्रचलित है।

मैंने कहा—यही **'पूजा-क्रम'** तो हम लोगों में भी प्रचलित है। तब आप यह कैसे कहती हैं कि हम लोग **अवधूताचारी** हैं?

उन्होंने हँसकर कहा—इसका ज्ञान इतनी जल्दी तुम्हें नहीं होगा, परन्तु मोटे हिसाब से मैं तुम्हें बताती हूँ। यह तो तुम जानते ही हो कि हमारे मण्डल के लोग दूसरे साधकों के संसर्ग में नहीं आते, परन्तु एक बार **विन्ध्याचल** में मैंने एक **अवधूत** का चक्र देखा। मैं मकान के बाहर एक कमरे में ठहरी हुई थी। **निशा-काल** में उसी मकान के भीतर **अर्चन** होने लगा। आठ-दस साधक उसमें शामिल हुए थे। गर्मी के दिन थे। खुली जगह में बैठकर वे **अर्चन** करने लगे। **अर्चन** क्या था, तमाशा था! न **कलश का स्थापन** था, न **यन्त्र** का। जहाँ तक मैं समझता हूँ, उन्होंने कदाचित् ही **तत्त्वों का शोधन** किया होगा। **शक्ति** भी नहीं थी। **चर्वण-तर्पण** करने के

बाद वे सब लोग उठकर चले गए। मैं उनका सारा कार्य-क्रम अपने कमरे की खिड़की से देखती रही। बाद को मैंने इस पूजन की चर्चा अपने **आचार्य-देव** से की। उन्होंने बताया कि यह **'कुलाचार'** नहीं **'अवधूताचार'** है। हम लोग पूजा के एक भी अङ्ग का त्याग नहीं करते। **कलश, श्री-पात्र** तथा **यन्त्र का स्थापन** अवश्य करेंगे। इसके सिवा बिना **शक्ति** के पूजन भी नहीं करेंगे। **आचार्य-देव** ने मुझसे **'अवधूताचार'** के सम्बन्ध में यही कहा था कि वे **'कुलाचार'** के नियमों का उल्लङ्घन करते हैं। यही कारण है कि हम लोग उनके पूजन में शामिल नहीं होते। उनका **'कुलाचार'** के सम्बन्ध में मेरे पिता-जैसा ही आग्रह रहता है। इसके सिवा वे **भावों** पर भी अधिक जोर देते हैं। वे उन्हें **कुलाचार** का मुख्य अङ्ग मानते हैं।

मैंने कहा—**'भावों'** से आपका क्या मतलब है? और **'कुलाचार'** से उनका क्या सम्बन्ध है?

उन्होंने कहा—यही **पशु, वीर** और **दिव्य-भाव,** जिन्हें सभी साधक जानते हैं, परन्तु हम **कुलाचारी** लोग उन्हें दूसरे ही दृष्टि-कोण से देखते हैं।

मैंने पूछा—वह कैसे?

उन्होंने कहा—**भाव** तीन होते हैं—**१ पशु-भाव, २ वीर-भाव** और **३ दिव्य-भाव। पशुभाववाले शाक्त साधक** का धर्म **'रुद्रयामल तन्त्र'** के उत्तर खण्ड के दूसरे पटल में यह बतलाया गया है—**नित्य-श्राद्ध, सन्ध्या-वन्दन, पितृ-तर्पण, देव-दर्शन, तीर्थ-दर्शन, गुरु का आज्ञा-पालन** करना, **नित्य इष्ट-देवता-पूजन पशु-भाव के धर्म हैं।** जो साधक इन कर्मों को करता हुआ अपना समय व्यतीत करता है, उसको इस **मर्त्य-लोक में सिद्धि** प्राप्त होती है अर्थात् उसका **जीवन सफल** हो जाता है। उसी **तन्त्र** में आगे यह भी लिखा है कि **शाक्त साधक 'पशु'-भाव** में केवल **१६ वर्ष** तक स्थित रहता है। इसके बाद वह **'वीर'-भाव** को प्राप्त हो जाता है। **'वीर'-भाव** की स्थिति उसको **पचास वर्ष** के वय तक प्राप्त रहती है। इसके बाद **'दिव्य'-भाव की स्थिति** आती है। अन्त में **तीनों भावों की एकता** हो जाती है, जिससे **साधक— देवता के रूप** को प्राप्त करता है अर्थात् **'कौल'** हो जाता है। इसी को हम लोग **'कुल-क्रम'** कहते हैं। यही **शाक्त गृहस्थों का 'कुलाचार'** है, परन्तु आज यह बात देश के शाक्तों में कहाँ तक पाई जाती है, यह तुम लोग अच्छी तरह जान सकते हो।

मैंने कहा—**भाभी जी,** आपने खूब बताया! अब मैं **'कुलाचार'** और **'अवधूताचार'** का भेद समझ गया। आप खूब छिपी रहीं। **जगदम्बा** भला करें **सेठ जी** का, जिन्होंने मुझे घर-बैठे दूसरी **भैरवी माँ** प्राप्त करा दी।

उन्होंने हँसकर कहा—कहाँ **भैरवी माँ** और कहाँ मैं! परन्तु इतना कहूँगी कि तुम पर **जगदम्बा** की सचमुच बड़ी कृपा है और मेरी उनसे प्रार्थना है कि तुम्हारी **धर्म-बुद्धि,** दिन-दिन अधिकाधिक विकसित होती जाए और तुम **'कुल-तत्त्व'** के पूर्णज्ञ हो जाओ।

मैंने उठकर **भाभी जी** की पद-धूल अपने मस्तक से लगाई और विदा माँगकर घर चला आया। उस दिन से **भाभी जी** की मुझ पर विशेष कृपा हो गई और जहाँ पहले वे **भौतिक धन** से मेरी सहायता किया करती थीं, वहाँ अब वे **आध्यात्मिक धन** से भी सहायता करने लगीं और उनकी यह सम्पत्ति सचमुच ही अटूट थी। मैंने उससे **असीम लाभ** उठाया।

* * *

निवेदन

'चण्डी' के प्रवर्त्तक **पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल** का जन्म **बकसर ग्राम, जिला उन्नाव (उ०प्र०)** में **वैशाख कृष्णा तृतीया सं० १९४५ विक्रमी (सन् १८८८)** को हुआ था। वे सन् १९१९ ई० में ३२ वर्ष की आयु में **प्रयाग** आ गए थे और फिर उनका शेष जीवन लगातार **प्रयाग** में ही **ज्येष्ठ कृष्णा एकादशी, सं० २०२८ वि०—२० मई, १९७२** तक बीता।

प्रयाग में **शुक्ल जी** तत्कालीन सर्वाधिक लोक-प्रिय एवं प्रतिष्ठित दो मासिक पत्रिकाओं—**'बाल-सखा'** एवं **'सरस्वती'** के क्रमशः सम्पादक बने और उनके माध्यम से उन्होंने अपने साहित्यिक गुरु **'आचार्य' पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी** के अनुरूप **'हिन्दी'-साहित्य** को बहु-मुखी नई दिशाएँ दीं।

शुक्ल जी जब अद्वितीय **'सरस्वती'** मासिक पत्रिका के सम्पादक थे, तब बहुत कम लोगों को ज्ञात था कि वे उच्च कोटि के साधक भी हैं। उस काल में **शुक्ल जी** ने हिन्दुओं के **कर्म-काण्ड, शाक्त-साधना** और **तन्त्र-शास्त्र** पर जो कुछ लिखा था, उसे अपने पास व्यक्तिगत पत्रावली के रूप में रख छोड़ा था।

सन् १९३६ ई० में जब यह प्रतीत होने लगा कि **भारत की स्वतन्त्रता** अधिक दूर नहीं है, तब **शुक्ल जी** के मन में यह विचार घनीभूत हुआ कि स्वतन्त्रता की वेला में लोगों को **'धर्म'-सम्बन्धी प्रामाणिक जानकारी** देना बहुत आवश्यक है।

शुक्ल जी 'धर्म'-सम्बन्धी प्रामाणिक जानकारियों के सम्बन्ध में बङ्गाल के महान् कौलाचार्य **पं० शिवचन्द्र भट्टाचार्य** तथा उनके विख्यात शिष्य कलकत्ता हाईकोर्ट के जज **सर जान वुडरफ (आर्थर एवेलान)** के कार्यों से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने यह भी समझ लिया था कि **शिवचन्द्र भट्टाचार्य** का कार्य वङ्ग-भाषा में है और **सर जान वुडरफ** का अंग्रेजी में ! यदि सभी देश-वासियों को **'धर्म' की प्रामाणिक जानकारी** देनी है, तो **'राष्ट्र-भाषा'-हिन्दी** में यह महत् कार्य करना होगा।

अप्रैल, १९४२ में **शुक्ल जी** ने अपने उक्त विचारों के अनुरूप **'चण्डी-पत्रिका** का प्रकाशन अपने सुयोग्य शिष्य **पं० शिवनाथ काटजू** के द्वारा प्रारम्भ करवाया। प्रस्तुत लेख-माला—**'साधक का संवाद'** का प्रकाशन **शुक्ल जी** के द्वारा पहले से लिखी हुई पाण्डुलिपियों के आधार पर **'चण्डी' वर्ष १, अङ्क २, पृष्ठ ६८** से प्रारम्भ हुआ। **'चण्डी' वर्ष १, पृष्ठ ६८, ११२, २१३, २५८, ३०७, ३५१, ४५८, ५०५, ५५५** में इस लेख-माला के ९ खण्ड **शुक्ल जी** के कल्पित नाम–**'एक सत्यान्वेषी'** के नाम से प्रकाशित हुए। **'चण्डी' वर्ष २** में इस लेख-माला के पुनः ३ खण्ड प्रकाशित हुए। **'चण्डी' वर्ष ३** में इस लेख-माला का प्रकाशन नहीं हुआ। **'चण्डी' वर्ष ४** में **'लेख-माला'** का अन्तिम अंश प्रकाशित हुआ।

इस प्रकार **'साधक का संवाद'**–लेख-माला से यह भली-भाँति स्पष्ट होता है कि **शुक्ल जी–'चण्डी' पत्रिका** के प्रकाशन के आरम्भ होने से बहुत पूर्व योजना-बद्ध-रूप से **'धर्म'-सम्बन्धी प्रामाणिक जानकारियों** को जानने/समझने और समझकर संग्रहीत करने में लगे थे।

आज जब **'चण्डी'-पत्रिका** अपने प्रकाशन के **६३वें वर्ष** में प्रवेश कर रही है, तब उक्त महत्त्व-पूर्ण लेख-माला–**'साधक का संवाद'** को एक स्वतन्त्र अङ्क अथवा पुस्तक के रूप में प्रस्तुत करते हुए हमें बहुत प्रसन्नता हो रही है। हमें विश्वास है कि **'चण्डी'** के सभी पाठक-बन्धु इस विशिष्ट अङ्क से विशेष प्रसन्नता का अनुभव करेंगे क्योंकि रोचक 'वार्त्तालाप' के माध्यम से जितनी जानकारी इससे सहज ही प्राप्त होती है, उतनी किसी अन्य पुस्तक से नहीं मिल सकती।

शुक्ल जी की ११७वीं जयन्ती
वैशाख कृष्णा तृतीया (८ अप्रैल, २००४)
श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज

— ऋतशील शर्मा

रजि. सं. ३२९८१/५७

'चण्डी' के प्रवर्त्तक
'कौल-कल्पतरु'
पण्डित देवीदत्त शुक्ल

'चण्डी'-परिवार की शक्ति
शुक्ल जी की अर्द्धाङ्गिनी
श्रीमती शिवदेवी शुक्ला

श्रीचण्डिका और श्रीअम्बिका

पूज्य शुक्ल जी की जन्म-स्थली :
प्रसिद्ध देवी-स्थान : ''श्री चण्डिका जी''
बकसर, उन्नाव, उ०प्र०

मुद्रक : पुष्पी ऑफसेट, प्रयाग (०५३२-२४१७८१७)

प्रकाशक : श्रीऋतशील शर्मा, श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-६ (०५३२-२५०२७८३)